सितम्बर 2022

रंग संवाद

रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र की
संवाद पत्रिका

आनंद का राग-रस

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र

रबीन्द्रनाथ टैगॉर विश्वविद्यालय, भॉपाल

शिक्षा तथा संस्कृति की परस्परता का रचनात्मक उपक्रम

अवधारणा, परिदृश्य और उद्देश्य

नई छात्र पीढ़ी में विज्ञान और तकनीकी शिक्षा के साथ संस्कृति, कला तथा साहित्य के प्रति जिज्ञासा, अभिरूचि, सृजन और संस्कारशील व्यक्तित्व गढ़ने के उद्देश्य से रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वकला एवं संस्कृति केन्द्र की स्थापना की गई है।

अपनी सक्रियता के चलते इस केन्द्र ने अध्ययन, शोध और प्रदर्शनकारी गतिविधियों के माध्यम से विश्वविद्यालय में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं तथा विभिन्न विधाओं के अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त सर्जकों और विशेषज्ञों के बीच नवोन्मेषी रचनात्मक परिवेश तैयार किया है।

यह केन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल, डॉ. सी. वी. रामन विश्वविद्यालय, बिलासपुर, खंडवा और पटना तथा आईसेक्ट विश्वविद्यालय हजारीबाग में समान रूप से संचालित है। भोपाल इसकी केन्द्रीय इकाई है।

विभिन्न ललित कलाओं, संस्कृति और साहित्य के विभिन्न पक्षों को अपनी गतिविधियों के दायरे में रखते हुए यह केन्द्र आंचलिक प्रस्तुतियों के अलावा शोध, विमर्श, संवाद, सृजन-शिविर, कार्यशालाओं, पुस्तक लोकार्पण, व्याख्यान, संपादन, अनुवाद और दस्तावेज़ीकरण की दिशाओं में सक्रिय है।

स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व के अनेक आयोजनों ने सकारात्मक परिवेश तैयार किया है। इस केन्द्र की सक्रियता को साहित्य, ललित कलाओं और रंगमंच की श्रेणियों में देखा जा सकता है।

अपनी प्रवृत्तियों और उद्देश्यों के साथ टैगोर विश्वकला एवं संस्कृति केन्द्र बहुलता की संस्कृति का आदर करते हुए सौहार्द और समन्वय की पुनर्स्थापना के लिए कृत संकल्प है।

संपर्क

भोपाल-चिकलोद रोड, बंगरसिया चौराहे के पास, भोपाल, फोन : 0755-2700400, 2700404, मो. 9826392428

ई-मेल : tagorekala9@gmail.com, vinay.srujan@gmail.com

रंग संवाद

फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स, दिल्ली द्वारा श्रेष्ठ प्रकाशन पुरस्कार से सम्मानित

सितम्बर- 2022

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र

रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय की संवाद पत्रिका

प्रधान संपादक

संतोष चौबे

choubey@aisect.org

संपादक

विनय उपाध्याय

vinay.srujan@gmail.com

संपादन सहयोग

मुदित श्रीवास्तव

samvaad.mudit@gmail.com

शब्दांकन : **अमीन उद्दीन शेख**

संपादकीय संपर्कः

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र, ऋतुरंग प्रकोष्ठ

रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्व विद्यालय

ग्राम मेंदुआ, पोस्ट-भोजपुर, बंगरसिया चौराहा के पास,

भोपाल-चिकलोद रोड, रायसेन-464993

मोबाइल : 9826392428

• • •

ज़रुरी नहीं कि पत्रिका में संग्रहित आलेखों-चित्रों में व्यक्त रचनाकारों के विचारों से 'रंग संवाद' सहमत हो। किसी भी विवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र भोपाल रहेगा।

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र, रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल द्वारा प्रकाशित

ई-मेल : **tagorekalabpl@gmail.com**

मुद्रक : आईसेक्ट पब्लिकेशन, सी-10, इंडस्ट्रियल एरिया, बगरोदा (भोपाल)

इस बार

- आभा विराट की– यामिनी राय/8
  मूल बांग्ला से अनुवाद : उत्पल बैनर्जी
- सपनों की रंगरेज़ एलिजाबेथ– सोनाली पिठवे/12
- हर कला में होती है नाटकीयता/15
  देवेन्द्रराज अंकुर से विनय उपाध्याय की विरल वार्ता
- कहाँ खो गई हिन्दी की हुँकार?– मुरलीधर चाँदनीवाला/22
- किताबों की दुनिया– रमाशंकर सिंह/25
- ये जो ज़िंदगी है... किताब है– ममता व्यास/29
- बाँसुरी का बाँवरा– राजेश गनोदवाले/31
- सरोद का शिखर– ज़ाहिद ख़ान/34
- आनंद का वह राग-रस– रितु शर्मा/37
- नदी से माँगी माँ की बेटी हूँ/39
  लोक गायिका शारदा सिन्हा से अनुलता राज नायर की मुलाक़ात
- वर्षा जल पर काग़ज़ की नाव– श्रीराम परिहार/46
- मन भीगे मौसम मल्हार के– संजय पटेल/50
- रंग दल बादल के– शिफाली/56
- तराने रिमझिम के– अनुराग तिवारी/59
- प्याले में रूह पानी की– स्वरांगी साने/64
- बेगमों के शहर में 'बेगम' का 'बादल राग'– विनय उपाध्याय/67
- नया आसमान नया रंग/70
- देश की माटी देश का राग– दयानंद पांडेय/73
- बेढब लकड़ियों का बेमिसाल शिल्पी– मनीष वैद्य/77

सृजन के आसपास/79

जयनारायण प्रसाद, दीपक पगारे, चंद्रकांत टेम्बे
हिमांशु सोनी, संजय सिंह राठौर, निशांत

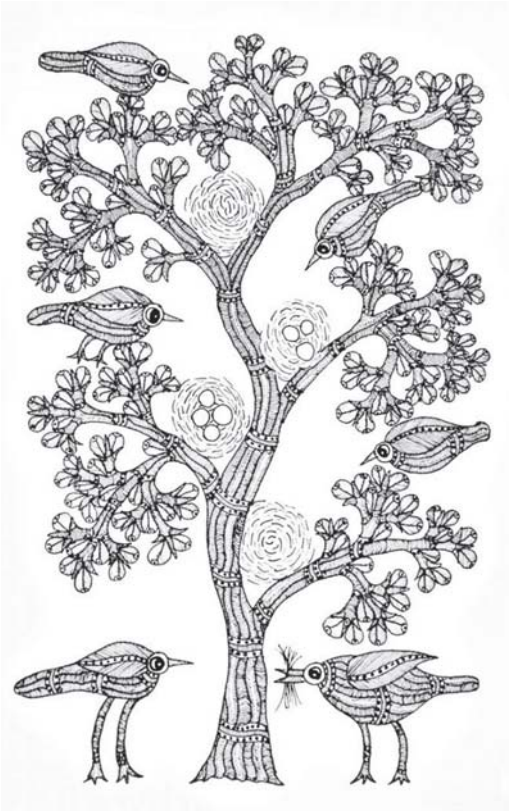

चित्रकांत श्याम

➲ **आवरण चित्र:** तिथी ➲ **आवरण आकल्पन :** वंदना श्रीवास्तव

➲ **भीतर का आकल्पन :** विनय उपाध्याय, अमीन उद्दीन शेख

➲ **छायाचित्र :** उपेन्द्र पटने, राज, प्रवीण वाजपेयी, आदित्य उपाध्याय, देबजीत दास

➲ **सहयोग :** समीर चौधरी, रोहित श्रीवास्तव

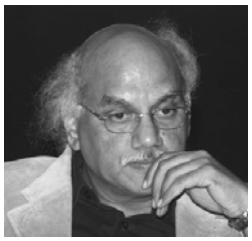

पावस की विदाई में 'विश्वरंग' की आहटें

पावस ऋतु बस अब जाने को है। 'रंग संवाद' का यह अंक उसकी अनेक छवियों को समेटता आपके सामने है। 'ऋतुराग' में रचनाकारों ने वर्षा ऋतु का संगीत और प्रकृति की लय को सुनने की कोशिश की है तो लोक से लेकर शास्त्रीय तक और लोकप्रिय से लेकर फ़िल्म संगीत तक उसके विस्तार को चीन्हने का रोचक यत्न भी किया है। यहाँ तक कि संगीतकारों के चयन में भी सरोद और बाँसुरी की ध्वनि शामिल है जो पावस में सुनने में अत्यंत कर्णप्रिय लगते हैं जैसे वे इसी ऋतु के लिये बने हों।

ऋतुओं का मनुष्य के मन से गहरा सम्बन्ध होता है। वे आनंद और अवसाद पैदा करती हैं, उल्लास और निराशा पैदा करती हैं, मन को साफ़ और धुला-धुला या अंधकारमय और कुहासे भरा बनाती हैं। भारतीय शास्त्रीय रागों को तो मौसम या प्रहर के हिसाब से बाँटा ही गया है, हमारा रचनाकर्म भी एक हद तक ऋतुओं से प्रभावित होता है। लोक संस्कृति के अध्येता श्याम सुंदर दुबे ने अपने साक्षात्कार में कहा है कि मैं बारिश के उल्लासमय वातावरण में गीत, कविता और लोक संस्कृति पर काम करता हूँ तो गर्मी की लंबी दुपहरियों को कहानी और गद्य लेखन के लिये उचित मानता हूँ। ये उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। ठंड के कुहासे भरे दिन क्या हम सबके मन में अवसाद नहीं पैदा करते? निर्मल वर्मा की कहानियों से यह बात पूछिये।

'रंग संवाद' का यह अंक पावस की उन सब छटाओं को समेटता है जो मन को हर्षित और उल्लसित करती हैं। साथ ही दो अद्‌भुत आलेखों-साक्षात्कारों से हमें रुबरु भी कराता है जिससे कला संबंधी हमारी अवधारणाएँ और स्पष्ट होती हैं। पहला है टैगोर के चित्रों के बारे में यामिनी राय का आलेख और दूसरा है नाट्य कलाओं के बारे में देवेंद्रराज अंकुर का साक्षात्कार। यामिनी राय अपने आलेख के प्रारंभ में ही कहते हैं कि कलाकारों को जब अपने ख़ालिस भावावेगों से कुंठा होने लगी तो वे अपने निर्माण को त्रुटिहीन करने, पॉलिश करने की कोशिश की ओर ध्यान देने लगे। पॉलिश की जाने लगी लेकिन रचना के प्राण प्रायः दब ही गये। गठन और गढ़न खो गया। सभ्यता की विडंबना की वजह से कला हाँफने लगी। वे कहते हैं- 'पॉलिश करना छोड़ो, जीवंतता की फ़िक्र करो।' वहीं अंकुर जी बहुत स्पष्टता से कहते हैं कि नाटक प्रतिरोध की कला है। किसी भी संरचना को उठाकर देख लीजिये। नाटक तभी आगे बढ़ता है जब दो विचारधाराएँ आपस में टकराती हैं और वह संघर्ष बहुत दूर तक चलता है। अंततः उसमें से किसी एक की जीत होती है, और दूसरे की हार होती है। वे कहते हैं, 'हर कला में नाटकीयता होती है।'

तो इस तरह वैचारिक उद्वेलन और पावस के उल्लास को समेटे रंग संवाद का यह अंक आपके सामने प्रस्तुत है।

पावस की इस विदाई के साथ-साथ 'विश्वरंग' अंतर्राष्ट्रीय साहित्य एवं कला महोत्सव की आहटें सुनाई पड़ने लगी हैं। पहले पहल 2019 में रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय द्वारा भोपाल से प्रारंभ हुआ यह उत्सव अब अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर चुका है। इस बार लगभग 50 देश इसमें भागीदारी कर रहे हैं। कला, साहित्य, संस्कृति, विज्ञान और शिक्षा पर लगभग सबसे बड़े फेस्टिवल्स में अब विश्वरंग भी शामिल है। वास्तव में तो उत्सव की शुरुआत 22 सितंबर से ही हो जायेगी जब देश भर में ग्यारह पुस्तक यात्रएँ निकाली जायेंगी। ये यात्रएँ आईसेक्ट के सभी विश्वविद्यालयों द्वारा आयोजित की जायेंगी। ये करीब 100 स्थानों पर जायेंगी और रास्ते में लगभग 500 पंचायतों को भी पुस्तकों से जोड़ेंगी। वर्तमान में पुस्तक संस्कृति के विकास का यह इकलौता प्रयास है जिसमें 1000 से अधिक लेखक-रचनाकार शामिल होंगे जो शब्द तथा पुस्तक के पक्ष में खड़े नजर आयेंगे।

'विश्वरंग' की एक अन्य प्रमुख गतिविधि तीस अन्य देशों में विश्वरंग उत्सव का आयोजन है जो आभासी माध्यमों से विश्वभर में प्रसारित होगा। इनमें शामिल कई रचनाकार भोपाल में 14 से 20 नवंबर के बीच आयोजित होने वाले प्रमुख कार्यक्रम में भी हिस्सा लेंगे। राष्ट्रीय पेंटिग कांपिटिशन अब विश्वरंग का अनिवार्य हिस्सा है और चित्रकला पर केंद्रित सेमीनार तथा मोनोग्राफ्स का प्रकाशन विश्वरंग का प्रमुख आकर्षण होगा। कलात्मक, वैचारिक और सांस्कृतिक उद्वेलन से भरपूर विश्वरंग 2022 में शिरकत के लिये मैं आपका आवाहन करता हूँ।

'रंग संवाद' का यह अंक आपको कैसा लगा ज़रूर बताइयेगा।

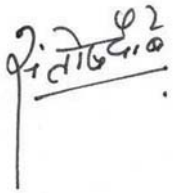

संतोष चौबे
प्रधान संपादक

हिन्दी की हमजोली

विनय उपाध्याय

मैं सदियों का आवाहन हूँ, वर्तमान की पाती हूँ
मैं हिन्दी हूँ, हिन्दुस्तान की थाती हूँ।

'दिवस' के बहाने हिन्दी की महिमा को गाना, पोथियों के पन्ने पलटना, क़लम के किरदारों को याद करना और किसी कविता की ज़मीन से उठती मनुष्यता की पवित्र गंध को महसूस करना सुख देता है। निगाह सरहद पार के मुल्कों पर जाती है तो हिन्दी के प्रति वहाँ जिज्ञासा, प्रेम और अध्ययन की बढ़ती रुचियों को देखकर सुखद विस्मय होता है। गर्व और विश्वास गहरा होता है कि सदियों में फली-फूली हिन्दी की ध्वजा सारी दुनिया की हवाओं में लहरा रही है। यूँ हिन्दी की भाषायी समृद्धि और उसके वजूद पर स्वाभिमान छलकता है। लेकिन अफ़सोस इस बात का भी होता है कि विश्वमंच पर हिन्दी की हुँकार भरने वाला हिन्दुस्तान 'हिंग्लिश' के सामने नतमस्तक क्यों है?

इस विसंगति से परे हिन्दी के संसार को देखें तो लगता है कि भाषा का भी एक देहराग होता है। उसकी भी भंगिमा होती है। हाव-भाव होते हैं। उसकी भी आवाज़ें हैं। हमारी सभ्यता ने अपनी लंबी यात्रा में इसकी परवरिश की। भाषा को पत्थर की मूरत नहीं, बल्कि अष्टधातु की प्रतिमा के रुप में गढ़ा। वह हर युग में गलती-ढलती और पिघलती रही। मानों अपना दामन पसारकर कहती हो- ''मैं ज्ञानियों की भी हूँ। पोथियों से दूर कबीरों की भी हूँ। मेरा मरकज़ महल भी है और झोपड़ी भी मेरा बसेरा है। मैं हर सीने में धड़क सकती हूँ। अपना हृदय खोलिए, फैलाइए अपनी बाहें....।

भाषा में आदमी की तमीज़ को तौलती हिन्दी के बेमिसाल कवि धूमिल की कविता से गुज़रते हुए भाषा के रिश्ते पर सोच के नए कपाट खुलते हैं- ''कविता क्या है? क्या यह व्यक्तित्व बनाने की/चरित्र चमकाने की/खाने-कमाने की चीज़ है। ना भाई ना/कविता भाषा में आदमी होने की तमीज़ है''।

अपने वजूद और स्वाभिमान का उद्घोष करती एक भाषा अपनी यात्रा में जब दूर तक निकल जाती है तो सरहदों के दायरे सिमट जाते हैं। हिन्दी की हुंकार भी तो कुछ ऐसी ही है तभी तो उसका विश्व लगातार फैलता रहा है। भारत की मिट्टी का संस्कार पाकर इस भाषा ने अपनी आत्मीयता का आँचल कुछ इस तरह पसारा कि हर युग की नई आहटें इसमें पनाह पाती रहीं। जाति, वर्ग, वर्ण, विषय, भाषा और तकनीक की तमाम विविधताओं

के बीच हिन्दी का आचरण ऐसा उदार और समावेशी रहा कि रचनात्मकता की नई संभावनाएँ हमेशा नए आकार लेती रहीं। अभिव्यक्ति का दायरा बढ़ा। सम्प्रेषण की नई दिशाएँ खुलीं। कौशल का विकास हुआ। ज्ञान और सूचना ने नए पंख फैलाए। यूँ हिन्दी की महिमा का गान साहित्य के परिसरों तक सीमित न रहकर नए इलाकों में भी गूँजता-गमकता रहा।

इस पृष्ठभूमि के साथ हिन्दी की मौजूदा दिशा और दशा पर जब निगाह रूकती है तो प्रयोग, नवाचार और उपलब्धियों का एक सतरंगी आसमान खुलता दिखाई देता है। ये वो फ़लक है जहाँ हिन्दी के नए हस्ताक्षर नुमाया होते हैं। मालूम होता है कि यह भाषा अब नई ज़रूरत और नई स्थापनाओं के बीच अपनी अहमियत की तस्दीक़ कर रही है। दिलचस्प यह कि नए क्षेत्रों में हिन्दी को लेकर जो नया महत्वपूर्ण और विपुल सृजन हो रहा है उसे पूरा मान, महत्व और प्रोत्साहन मिल रहा है। इसकी बड़ी मिसाल इधर मध्यप्रदेश ने पेश की है। संभवत: यह पहला राज्य है जहाँ की सरकार ने हिन्दी के विकास में अमूल्य योगदान के लिए संस्था और व्यक्तियों को सम्मानित करने विभिन्न श्रेणियों में पाँच महत्वपूर्ण पुरस्कारों की स्थापना की है। ग़ौरतलब है कि कोई दस बरस पहले मध्यप्रदेश के संस्कृति महकमे द्वारा हिन्दी दिवस (14 सितंबर) पर आयोजित एक समारोह में मुख्यमंत्री ने इन सम्मानों की स्थापना की घोषणा की थी। सुखद संयोग कि हिन्दी अनुरागी तत्कालीन प्रमुख सचिव संस्कृति मनोज श्रीवास्तव ने देर न करते हुए शासकीय स्तर पर इन सम्मानों की कार्यवाही को अंजाम दिया।

पहला सम्मान सूचना प्रौद्यागिकी में हिन्दी पर केन्द्रित है जिसके दायरे में हिन्दी सॉफ्टवेअर, सर्च इंजिन, वेब डिज़ाइनिंग, डिजिटल भाषा, प्रयोगशाला, प्रोग्रामिंग, सोशल मीडिया, डिजिटल ऑडियो, विजुअल एडीटिंग आदि कार्य आते हैं। दूसरा सम्मान विश्व प्रसिद्ध हिन्दी कथाकार और चिंतक निर्मल वर्मा की स्मृति में स्थापित है जो भारतीय अप्रवासी के विदेश में हिन्दी के विकास में अमूल्य योगदान के लिए दिया जाता है। तीसरी कोटि का सम्मान इस मायने में प्रेरक और उल्लेखनीय है कि यह हिन्दी को अगाध प्रेम करने वाले विदेशी फादर कामिल बुल्के के भाषायी पुरूषार्थ की याद को समर्पित है। इस सम्मान के दायरे में विदेशी मूल के लोगों का हिन्दी भाषा एवं उसकी बोलियों के विकास में उत्कृष्ट योगदान है। एक अन्य सम्मान हिन्दी में वैज्ञानिक और तकनीकी लेखन एवं पाढ्य पुस्तकों के निर्माण को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से स्थापित है जो मूर्धन्य वैज्ञानिक लेखक गुणाकार मुले के नाम से रचा गया है। पाँचवी श्रेणी में हिन्दी सेवा सम्मान है। इसके पीछे दृष्टि अहिन्दी भाषी उन लेखकों के सृजन को चिन्हित करने की है जिन्होंने अपने कृती-व्यक्तित्व से हिन्दी के संसार को समृद्ध किया है। इस प्रवाह में यह जानते चलें कि इन सभी सम्मानों के अंतर्गत एक लाख रूपए की आयकर मुक्त राशि, प्रशस्ति पट्टिका, शॉल और श्रीफल प्रदान किया जाता है। सम्मानों का चयन मध्यप्रदेश शासन द्वारा मनोनीत विशेषज्ञों की निर्णायक समिति स्वविवेक के आधार पर करती है।

विजेताओं को लक्ष्य करें तो इनमें गूगल और माईक्रोसॉफ्ट कार्पोरेशन प्राइवेट लिमिटेड के अलावा गुड़गाँव के बालेन्द्र शर्मा दाधीच, आगरा के हरिमोहन, ईटानगर के प्रो. ओकेन लेगो, विशाखापट्टनम् के प्रो. एस. शेषारत्नम्, सागर के छबिल कुमार मेहेर तथा भोपाल पुरूषोत्तम चक्रवर्ती, कर्पूरमल जैन, संतोष चौबे, पद्माकर सराफ, सुधीर मोता और अनुराग सीठा शामिल हैं। ये सम्मान इस बात की ताईद करते हैं कि हिन्दी में नई आवाज़ों को जज़्ब करने की ताक़त रही है। वह ज्ञान और सूचनाओं का बेहतर ज़रिया है। यह भी कि वह पाषाण की प्रतिमा न होकर अष्टधातु की मूरत में ढलने का माद्दा रखती है। धारणा साफ़ होती है कि हिन्दी की संपदा को महज़ साहित्य के आसपास ठहरकर आँकना उसका सही मूल्यांकन नहीं। उसके समग्र विकास को समेटने के लिए उसकी आधुनिक आभा से आँख मिलाने की भी दरकार है जो विज्ञान, तकनीक और सूचना प्रौद्योगिकी जैसे नए पायदानों पर खड़ी होकर अपनी कीर्ति का परचम फहरा रही है।

जानकर भला लगता है कि हिन्दी को लेकर तमाम नई तकनीक गंभीर और उत्साही है कम्प्यूटर, मोबाईल सहित अन्य नए उपकरणों में संचार का विकल्प हिन्दी लगभग अनिवार्य है। तकनीकी तौर पर इनका संचालन भी बहुत आसान हो गया है। हिन्दी के इस तकनीकी प्रशिक्षण के लिए अनेक मंच और सूत्र सक्रिय हैं। अनुवाद की एक ज़रूरी और सहायक भाषा के बतौर हिन्दी के प्रति रूझान बढ़ा है। विदेशों के हिन्दी अध्ययन केन्द्रों में नए शोधार्थी अनुवाद के सहारे भारत के महान साहित्य को और भारतवंशी, विश्व की अनुपम कृतियों को अपने लिए सहज पा रहे हैं।

सन् 2019 में जब रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय ने भोपाल में साहित्य और कलाओं का अंतरराष्ट्रीय समारोह 'विश्वरंग' आयोजित किया तो दुनिया के तीस देशों के प्रतिनिधियों की चौंकाने वाली शिरकत रही। विश्वरंग के आंगन में हिन्दी की चहक-महक से भरे परदेसी पाहुनों की दस्तक इस अर्थ में निराली थी कि उनके होंठों पर कबीर, तुलसी, टैगोर और निराला से लेकर नीरज तक ऐसे अनेक शब्द-शिल्पियों का ज़िक्र तैर रहा था जिन्हें हमने अपनी थाती मानकर पीढ़ियों का साहित्यिक संस्कार किया। रशिया की इगोर सीड, इज़राइल के गेनाद्य श्लोम्पर, साउथ अफ्रीका की लेबो मशीले और तिब्बत के तेंजिम तसन्डू जैसे दो दर्जन से भी अधिक लेखक-शोधार्थी इस प्रसंग पर प्रसन्न थे कि हिन्दी और भारतीय भाषाओं को केन्द्र में रखकर दुनिया का सबसे बड़ा उत्सव रचा जा रहा है और इस बहाने एक बार फिर इंसानी आपसदारी का एक वैश्विक मंच तैयार हो रहा है।

याद आता है भोपाल में पाँच बरस पूर्व हुआ दसवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन। मध्यप्रदेश उसका मेज़बान था। भारत सरकार के विदेश मंत्रालय ने उसे संयोजित किया था। राजनीति और संस्कृति की प्रखर-मुखर प्रवक्ता विदुषी सुषमा स्वराज ने इस अंतरराष्ट्रीय समागम की कमान अपने हाथों में सम्हाल रखी थी। इस विश्वमंच का उद्घोषक होने के नाते मैं पूरे विहंगम का निकट साक्षी रहा। संचार माध्यमों से संवाद के दौरान सुषमा स्वराज ने यह धारणा साफ़ कर दी कि यह हिन्दी के नाम पर सिर्फ़ साहित्यकारों का कुंभ नहीं है। यह गतिविधि हिन्दी के नए संसार और उसके तकनीकी विस्तार को देखने-समझने का ऐतिहासिक अवसर है। भोपाल के लाल परेड मैदान पर बने विशाल पांडाल के भीतर बने अलग-अलग डोम हिन्दी की गति और उसके नए गंतव्यों की गवाही दे रहे थे। ...दरअसल इस वक़्त सारी चुनौती नई तकनीक की है जिसके सहारे नई राहों पर चलना अपरिहार्य है। संवादों के नए संसार में भाषा को भला हाशिये पर कैसे छोड़ा जा सकता है। हिन्दी हमजोली के लिए सदा तैयार है।

इन आवाज़ों से गुज़रते हुए हिन्दी के कवि केदारनाथ सिंह को याद करना मौजूँ लगता है- ''जब चुप रहते-रहते अकड़ जाती है मेरी जीभ/दुखने लगती है मेरी आत्मा/ओ मेरी भाषा/मैं लौटता हूँ तुममें''। हिन्दी का दिवस या उत्सव मनाते हुए उसके आसपास लौटने और शब्द की अंतर्ध्वनियों में मनुष्य के होने की कामना बची रहेगी।

यामिनी राय

मूल बांग्ला से अनुवाद- उत्पल बैनर्जी

रबीन्द्रनाथ के चित्रों के प्रति मेरे मन में श्रद्धा उनकी ताक़त की वजह से है, छन्द की वजह से है। रूप-बोध का जो विराट आभास मिलता है, उसकी वजह से ही मेरे मन में उनके रचे हुए के प्रति आदर है। मेरा मत है कि पिछले दो सौ वर्षों से राजपूतकाल से लेकर आज तक, हमारे देश के चित्रों में जिस चीज़ का अभाव बढ़ने लगा, रबीन्द्रनाथ उसी अभाव के विरुद्ध प्रतिवाद की चाहत रखते हैं। चित्रों के लिए यह स्वाभिमान से भरी हुई तलाश है!

आभा विराट की

रबीन्द्रनाथ के चित्र

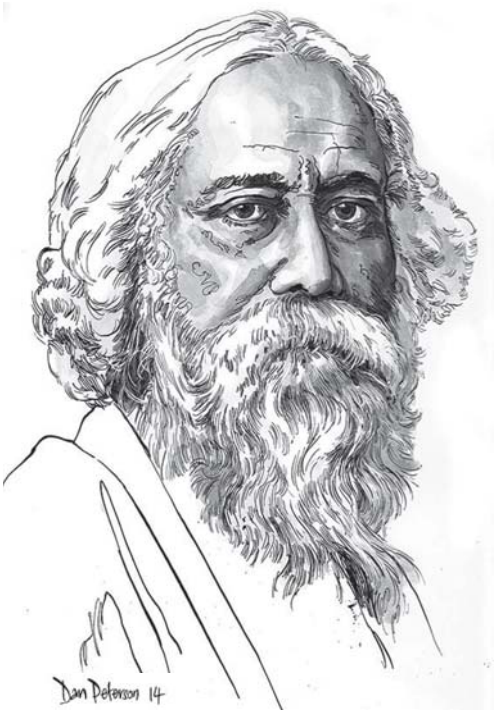

रबीन्द्रनाथ खाँटी यूरोपियन विषयवस्तु लेकर चित्र बनाया करते हैं। इसलिए हमें उनके चित्रों को समझने के लिए सबसे पहले आधुनिक यूरोपीय चित्रकला के वास्तविक उद्देश्य और समस्याओं को समझना होगा।

एक प्रसिद्ध यूरोपीय मूर्तिकार ने एक बार अपनी समसामयिक मूर्तिकला पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि अगर इन मूर्तियों को पहाड़ से नीचे फेंक दें तो हो सकता है टूट-फूट कर इनमें थोड़ी-बहुत जीवंतता आ जाए। यानी यूरोप की शिल्पकला के विशुद्ध सच की अभिव्यक्ति उस आदिम युग में ही हो गई थी। तब शिल्प पर सभ्यता का आवरण चढ़ाने की कोशिश नहीं की गई थी, तब फ़ोटोग्राफ़िक फ़िडेलिटी की ओर लोगों का रुझान भी नहीं बढ़ा था। विषयवस्तु के सामान्य लक्षण जिस आवेग को जगाते हैं, उसे पूरी तरह उघाड़ कर व्यक्त करना ही उद्देश्य था। परिणामस्वरूप जब किसी गुफ़ा के प्रागैतिहासिक चित्र में किसी घोड़े को देखता हूँ तो मुझे समझ में आता है वह घोड़ा ही है, लेकिन घोड़े या इस इस घोड़े के साथ मिलान करके देखने लायक़ त्रुटिहीन वर्णन उसमें नहीं है। यानी घोड़े का केवल मूल स्वरूप है। फिर सभ्यता जितनी आगे बढ़ती गई लोगों का रुझान रियलिज़्म की ओर बढ़ता गया। मनुष्य को अपने नग्न शरीर को लेकर कुंठा हुई तो उसने कपड़े और गहनों का आविष्कार किया और इससे रोज़ ही कृत्रिमता का बोझ बढ़ता चला गया। कलाकारों को भी ठीक इसी तरह ख़ालिस भावावेगों से कुंठा होने लगी तो अपने निर्माण को त्रुटिहीन करने की कोशिश, पॉलिश करने की कोशिश की ओर ही वे ध्यान देने लगे। पॉलिश की जाने लगी लेकिन रचना के प्राण प्राय: दब ही गए। गठन और गढ़न खो गया। सभ्यता की विडंबना की वजह से कला हाँफने लगी। इसलिए आज के कलाकारों ने ही इस रियलिज़्म के ख़िलाफ़ अभियान छेड़ दिया है। 'पॉलिश करना छोड़ो, जीवंतता की फ़िक्र करो', यह हुई उनकी बात।

तो फिर क्या प्रागैतिहासिक चित्रों और आज के शिल्प में कोई फ़र्क़ नहीं है? ज़रूर है, कारण कि यह है इसका इतिहास, इसके उद्देश्य में भ्रांति भले ही रही हो, लेकिन यह पूरी तरह अर्थहीन नहीं है। इसकी वजह यह है कि एक तरह से इसका एक बहुत बड़ा शिक्षामूलक मूल्य भी है। प्रागैतिहासिक चित्र अवचेतना के स्तर पर थे; उस समय के शिल्पियों को जिस सत्य का आभास हुआ था वह नितांत ही आकस्मिक था। पहाड़ से लुढ़क कर किसी मूर्ति को यदि जीवंतता मिल जाए तो वह भी आकस्मिक ही होगा। इस अवचेतन और आकस्मिक-सत्य को चेतना

के स्तर पर लाना ही आधुनिक कलाकार का उद्देश्य है, और इसे साकार करने में शिल्प के इतिहास का धारावाहिक अनुभव होना लगभग अनिवार्य हो जाता है। यानी जितने दिनों से कला रियलिज़्म के भ्रांत मोह में भटक रही है, उतने दिनों में भटकते रहने के मामले में बहुत सारे अनिवार्य अनुभव संचित हुए हैं; जैसे कि चित्रकारी के रंग और सामंजस्य वाला मामला। एकमात्र इसी अनुभव के दम पर ही प्रागैतिहासिक कला के उद्देश्य को अवचेतन के स्तर पर लाया जा सकता है। इसलिए हम देखते हैं कि आज यूरोप में जो लोग प्रागैतिहासिक चित्रकारी की ओर ध्यान दे रहे हैं, उनमें से लगभग सभी ने पहले-पहल रियलिस्टिक विषयवस्तु को दख़ल करने के लिए कितनी मेहनत की थी; जबकि दिलचस्प बात यह है कि इनका उद्देश्य इसी रियलिस्टिक चित्रकारी को ही तोड़ना था। पिकासो, मर्डिस इन सभी का यही उद्देश्य था, और होता भी क्यों न? जो क़ानून को तोड़ना चाहता है उसे पहले क़ानून के बारे में पुख़्ता जानकार होना ही पड़ता है।

चित्र: रबीन्द्रनाथ टैगोर

रबीन्द्रनाथ के चित्रों के विषय में एक ज़बरदस्त चीज़ हुई है। उन्हें कला के इतिहास के मध्यवर्ती स्तरों के संबंध में किसी तरह का अनुभव नहीं था। ऐसे मामलों में पतन अनिवार्य ही है, लेकिन सबसे बड़ा विस्मय यह है कि वैसा हुआ नहीं। उनके श्रेष्ठ चित्रों को देखकर हम सोच ही नहीं सकते कि उन्होंने इस क्षेत्र में अभी-अभी क़दम रखा है। उनकी इस अनुभवहीनता के छिप जाने की एकमात्र व्याख्या मुझे उनकी कल्पना की असामान्य छन्दोमय शक्ति में दिखाई देती है। फिर चाहे वह रेखा की बात हो या फिर रंग की बात हो, सब कुछ उन्होंने इसी कल्पनाशक्ति से ही हासिल किया है; उनके यहाँ अनभिज्ञता-जनित कमी ढूँढ़ना एक विडम्बना ही होगी। लेकिन कल्पना की प्रबलता हर समय एक-जैसी तथा सजग नहीं रहती, और दुर्बलता का मौक़ा देखकर कभी-कभी शायद उनकी अनभिज्ञता ने सिर भी उठाया है। जैसे 'असम्बद्ध' सिरीज़ के कुछ चित्रों में सब कुछ एक समान रूप से चित्रित करने के बाद नाक या आँख के समय ब्रश चलाते हुए वे साधारण रियलिस्टिक स्ट्रोक दे बैठे। हालाँकि किसी कलाकार की चर्चा करते हुए उनकी श्रेष्ठ रचना को लेकर ही बात की जानी चाहिए, और रबीन्द्रनाथ के श्रेष्ठ चित्रों में दमदार कल्पना की चौकसी में अनभिज्ञता पास फटक ही नहीं पाई है।

इसके अलावा रियलिज़्म की यह जो छुअन है उससे क्या आधुनिक यूरोपियन कला पूरी तरह बचकर निकल पाई है? मुझे तो लगता है कि आज तक भी वह ऐसा नहीं कर पाई है। हम पिकासो को ही लें। कितना तोड़ा-मरोड़ा है उन्होंने; कितने जी-जान से वे डाइमेन्शन के साथ जूझ रहे हैं। लेकिन उनमें रियलिज़्म की छुअन लग ही रही है। एक बार देगस अपने से आधुनिक लोगों की एक चित्र-प्रदर्शनी देखने गए। वहाँ उन्होंने कहा था- ''मुझे इनमें कुछ भी नयापन तो दिखाई नहीं दे रहा। मैंने तो चाहा कि मैं एक पूरा, साबुत प्याले का चित्र बनाऊँ और ये लोग तोड़-फोड़ कर साबुत प्याला बना रहे हैं। तो फिर नयापन कहाँ है?'' यह बात काफ़ी हद तक सच है। सच मतलब, उसकी रियलिस्टिक चित्रकला और अतिआधुनिक यूरोपीय चित्रकला के नज़रिये में कोई फ़र्क़ नहीं है। मुझे लगता है कि चाहे वह चीन हो, जापान हो, समूची दुनिया में कलाकारों का नज़रिया एक ही है, व्यतिक्रम केवल भारतीय कला में है। रियलिज़्म की छुअन से इस तरह कोई और नहीं बच सका है। पुराण का एक भावचित्र लीजिए-- जटायु के साथ यथार्थ के पक्षी का कोई संबंध नहीं है, इसके जन्म का इतिहास भी अनोखा है, वहाँ पर भी रियलिज़्म की छुअन नहीं लगी है। लेकिन क्या जटायु को आप ज़रा भी नहीं पहचान पाते हैं? निश्चित रूप से पहचान पाते हैं। लेकिन कल्पनालोक का पक्षी है, उसमें रियलिज़्म की छुअन ज़रा भी नहीं है। मुझे लगता है जिस दिन आधुनिक चित्रकार अपनी कला-साधना के विभिन्न स्तरों के अनुभवों का उपयोग कर पौराणिक जगत की निश्चयता और स्वच्छंदता को चित्रित कर सकेगा, उसी दिन आधुनिक यूरोपीय कला का आदर्श परिपूर्ण हो सकेगा। मेरा विश्वास है कि आज चित्रकला

चित्र: रबीन्द्रनाथ टैगोर

इसी तरह के पौराणिक जगत के निर्माण की दिशा में अग्रसर है। रबीन्द्रनाथ के चित्रों के प्रति मेरे मन में श्रद्धा उनकी ताक़त की वजह से है, छन्द की वजह से उनमें विराट रूप-बोध का जो विराट आभास मिलता है, उसकी वजह से। आजकल मुझे आपत्ति के स्वर सुनाई देते हैं कि इन चित्रों में एनॉटॉमी का अभाव है। लेकिन मुझे लगता है कि आजकल के चित्रों में एनॉटॉमी का बोध अगर सचमुच कहीं हैं तो वह केवल इन्हीं चित्रों में है। कारण कि चित्रों के लिए एनॉटॉमी की ज़रूरत असल में है ही कितनी? यह शास्त्र कलाकार को शरीर के विषय में केवल जानकारी देगा, इससे ज़्यादा वह और क्या देगा? शरीर के लिए हड्डियों का मुख्य उद्देश्य होता है शरीर को गिरने से रोकना, उसको खड़ा रखना, सतेज और मज़बूत बनाए रखना। हम जिस चित्रकला की चर्चा कर रहे हैं क्या उसमें यह सतेज होने का भाव सबसे अधिक नहीं है? रबीन्द्रनाथ के द्वारा बनाए चित्रों में जब मनुष्य को देखता हूँ तो मुझे लगता है कि वह यूँ ही नहीं गिर पड़ेगा, लगता नहीं है कि वह हवा के झोंकों से हिल रहा है। मुझे साफ़-साफ़ उस आदमी का वज़न महसूस होता है, सतेज वह सिर उठाए खड़ा है। रबीन्द्रनाथ के चित्र जो शक्तिशाली बन पड़े हैं, वे इन्हीं हड्डियों की वजह से ही है, छन्द के गठन की वजह से ही हैं।

मान लीजिए दो चित्रकार विशुद्ध कल्पना के सहारे एक लड़की का चित्र बनाना चाहते हैं, अर्थात दोनों ही देखे हुए व्यक्ति का चित्र नहीं बनाना चाहते। एक चित्रकार उस अदेखे को नितांत घरेलू अंदाज़ में बना रहा है, वहाँ कल्पना का प्रसार नहीं है और दूसरा चित्रकार लड़की का चित्र बना रहा है, हालाँकि वह भी बिना देखे ही बना रहा है- लेकिन वह उसे देखने की सीमारेखा के भीतर लाने की कोशिश ही नहीं कर रहा। वहाँ कल्पना का उन्मुक्त प्रसार साफ़-साफ़ दिखाई देता है, वृहत् के दर्शन होते हैं। इसे मैं थोड़ा समझाकर कहता हूँ। पोर्ट्रेट को देखकर बनाया जाता है, वैज्ञानिक पोर्ट्रेट को देखकर बता सकता है कि मॉडल चित्रकार से कितने फ़ुट दूर, कितने इंच नीचे बैठा था, उजाला किस ओर से आ रहा था वग़ैरह-वग़ैरह। मैं जब देख-देख कर किसी व्यक्ति का चित्र बनाता हूँ तब जब तक उसका चेहरा बनाता हूँ तब तक केवल उसका चेहरा ही देखता हूँ, और कुछ नहीं देखता, और जब शरीर का निचला हिस्सा बना रहा होता हूँ तो फिर उस समय चेहरे की ओर नहीं देखता, केवल निचला हिस्सा देखता हूँ। एक व्यक्ति दस फ़ुट दूर खड़ा होता है तो उसे किसी और ढंग से देखता हूँ, अगर वह सौ फ़ुट दूर हो तो वह ढंग कुछ और होता है, लेकिन वही व्यक्ति जब नज़र से ओझल हो जाता

पोर्ट्रेट को देखकर बनाया जाता है, वैज्ञानिक पोर्ट्रेट को देखकर बता सकता है कि मॉडल चित्रकार से कितने फ़ुट दूर, कितने इंच नीचे बैठा था, उजाला किस ओर से आ रहा था वग़ैरह-वग़ैरह। मैं जब देख-देख कर किसी व्यक्ति का चित्र बनाता हूँ तब जब तक उसका चेहरा बनाता हूँ तब तक केवल उसका चेहरा ही देखता हूँ, और कुछ नहीं देखता, और जब शरीर का निचला हिस्सा बना रहा होता हूँ तो फिर उस समय चेहरे की ओर नहीं देखता, केवल निचला हिस्सा देखता हूँ। एक व्यक्ति दस फ़ुट दूर खड़ा होता है तो उसे किसी और ढंग से देखता हूँ, अगर वह सौ फ़ुट दूर हो तो वह ढंग कुछ और होता है, लेकिन वही व्यक्ति जब नज़र से ओझल हो जाता है, तब भी क्या मैं उसे नहीं देखता? मैं तब भी तो उसे देखता हूँ। उसे संपूर्णता में देखता हूँ, उसकी उन आँखों से अदेखे चित्र को बनाना ही भारतीय चित्रकला की विशेषता है।

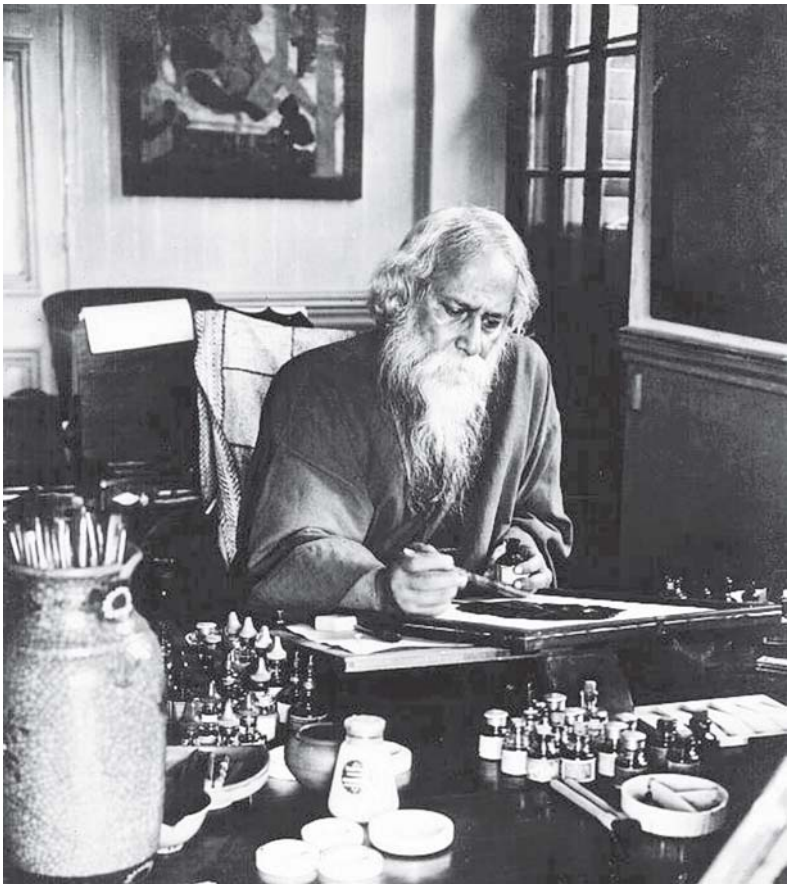

है, तब भी क्या मैं उसे नहीं देखता? मैं तब भी तो उसे देखता हूँ। उसे संपूर्णता में देखता हूँ, उसकी उन आँखों से अदेखे चित्र को बनाना ही भारतीय चित्रकला की विशेषता है। रबीन्द्रनाथ के चित्रों में यही विशेषता उभर आई है। रबीन्द्रनाथ आज के व्यक्ति हैं, इसलिए उनमें पौराणिक जगत की कोई ख़ास स्थिरता या निश्चयता नहीं है। इसी वजह से उनके चित्रों में यह विशेषता उनकी व्यक्तिगत कल्पना की लीला में ही अभिव्यक्त होती है।

रबीन्द्रनाथ के चित्रों को लेकर मेरी उनसे एक बार चर्चा हुई थी। उन्होंने कहा था- ''यहाँ मेरे पास आर्ट स्कूल से पढ़कर प्राप्त की हुई विद्या तो है नहीं, मेरे चित्र संभवतः पूरे नहीं बन पाते।'' ग्यारह साल स्कूल में पढ़ने के बाद भी कई बार लड़के मूर्ख ही रहते हैं। दूसरी ओर जो कभी स्कूल के पास भी नहीं फटके, ऐसे लड़कों के मुँह से ज्ञान की बातें सुनता हूँ। चित्रों के मामले में भी ऐसा ही हुआ है।

यामिनी राय (1887-1972) : बचपन का ज़्यादातर समय अपने ग्राम में मिट्टी की मूर्ति बनानेवाले कलाकारों के साथ बीता। इस तरह उनके शिल्पी-जीवन की शुरुआत हुई। 1934 में उनके बनाए एक चित्र को एक अखिल भारतीय चित्र-प्रदर्शनी में वॉइसरॉय का स्वर्ण-पदक प्राप्त हुआ था। भारतीय चित्रकला में उनकी स्वकीयता अपनी विशिष्टता से उज्ज्वल है। 1955 में उन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया गया। उनकी तूलिका से राधाकृष्ण और शिशुओं की तरह ही बड़ी ही सरल और सहजता से ग्रामीण किसान, कुम्हार, संथाल, फ़कीर, वैष्णव-जैसे हरेक चित्र खिल उठे हैं।

सपनों की रंगरेज़
एलिजाबेथ

सोनाली पिठवे

अपनी कला में अपने बीते स्वप्न की आभा को समेटती एलिजाबेथ ब्रूनर अपने देश हंगरी से कहीं दूर भारत में जीवन के अंतिम क्षणों तक कलामय जीवन को सार्थक रूप देती रहीं। जिसमें उनकी माँ एलिजाबेथ सैस ब्रूनर बेटी के साथ उसका साया बन पग-पग चल कला के रग-रग से वाक़िफ़ करती जाती दिखती है। अपनी बेटी के ख़्वाब से रूबरू होकर इस कलाकार माँ का मन अचानक भारत की ऐसी शख़्सियत से मिलने को बेताब हो उठता है जो उसकी बेटी को चिराग देकर कला की दुनिया में शामिल होने और उसकी संस्कृति में समा जाने की राह दिखा रहा था। शायद वह जानती थी कि जिसे लेकर वह हंगरी से किसी उद्देश्य से निकल पड़ी है, वो अब अपनी क़िस्मत की लकीर ख़ुद खींच रही है जिसमें उसकी कला की, उसके आनंद की और गहरे आत्मिक संतोष की एक सुखद यात्रा शुरू हो चुकी है।

शांति निकेतन, 1939: गुरूदेव और एलिजाबेथ

एलिजाबेथ ब्रूनर भारत में अपनी इस यात्रा में निरंतरता के साथ, अपने विचारों में कलामय उपस्थिति के चलते अपनी माँ एलिजाबेथ सैस ब्रूनर के साथ कलकत्ता के शांति निकेतन आयीं। शांतिप्रिय वातावरण में यहाँ कलागुरुओं के सानिध्य में भारतीय कला-संस्कृति को समझते हुए अपने कला कौशल को विस्तारित करने लगी। अध्ययन के दौरान उन्होंने अपनी कलाकृतियों में टैगोर और उनके परिवार के सदस्यों के चित्र व आसपास लोगों के व्यक्ति चित्र बनाए।

शांति निकेतन की इस यात्रा के दौरान उन्होंने प्राचीन भारत की परम्पराओं को जानने-सीखने का प्रयास किया। भारत में राज परिवारों के सानिध्य में उनके आमंत्रण पर चित्रों को सृजित कर उनकी प्रदर्शनियाँ भी आयोजित की। किन्तु यह एलिजाबेथ के लिए केवल उस लक्ष्य की प्राप्ति नहीं थी, जिसे वो हंगरी से निकलकर इतनी दूर तलाश रही थी। वह जीवन की उस नौका पर सवार थी जहाँ हर पड़ाव पर नई सीख के साथ एक और नई खोज का रास्ता बन जाता था। उनके ज़हन में तो किसी व्यक्ति का चित्र ख़ुद ब ख़ुद अपनी बात कह दें... ऐसा दृष्टिकोण था जो आगे नज़र भी आया। उनके ये चित्र एक आदिवासी लड़की से लेकर शाही ख़ानदान तक की अलग-अलग छवियों में उनके रहन-सहन ख़ुद बयाँ कर सकते हैं। ये गहरे रंग कभी उन संथाली आदिवासियों के चेहरों में केनवास के इर्द-गिर्द इस तरह मंडराते हैं जो उनके जीवन को अपने-अलग ढंग से प्रकट करते हैं। तो कहीं उस आलीशान चमक के भीतर बैठे राजघरों के चेहरों में ख़ुशमिज़ाजी होने के बहाने ढूँढ़ते हुए भी लगते हैं।

प्रेरणा

ये सभी रंग एलिजाबेथ की तूलिका पर चढ़कर कई चेहरों को रंगते हुए, बड़े बेबाकी से चुनौतियों के बीच, कभी किसी केनवास की सतह पर बरबस ही साबरमती के आश्रम में महात्मा की आत्मा को भी छूने की हिम्मत कर लेते हैं। एलिजाबेथ की कला इतने में भी विराम नहीं लेती और धीरे से अपनी ख़्वाइश का सेतु बना आगे बड़ जाती है। वैसे ही जैसे कभी अपनी माँ सेस ब्रूनर की तरह जिसने कभी आँधी के पीछे दौड़कर आँधी को भी पेंट कर दिया था, अपने मन में उठती

एलिजाबेथ ब्रूनर के बनाए व्यक्ति चित्रों में एक ख़ास झलक महसूस की जा सकती है। रबीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, सरोजनी नायडू, जवाहरलाल नेहरू और दलाई लामा जैसे अनेक प्रतिष्ठित, विद्वान लोगों के बीच जाकर उन्होंने उनके व्यक्तित्व को अपने केनवास पर चित्रित किया। विशेष रूप से एलिजाबेथ के व्यक्ति चित्रण में आध्यात्मिक पक्ष के स्वर सुनाई देते हैं जो सहज ही आत्माभिव्यक्ति से जुड़ जाते हैं।

आँधी को शांत करने के लिए। यह जज़्बा शायद माँ से बेटी को भी मिला। इस कलात्मक खोज में उसकी आँखें बहुत कुछ देख रही थीं, उसकी आत्मा टटोल रही थी। जो उसे उसकी जिज्ञासाओं के अनुरूप मिल रहा था, हर उस पड़ाव में, उसे वह अपना रही थी, शायद उसी में समा जाने के लिए। माँ सेस ब्रूनर भी चित्रकला में अपनी गहर समझ रखती थी या यूँ कहें कि सेस ब्रूनर के लैंडस्केप चित्रों की एक लंबी फेहरिस्त है जिसे बख़ूबी देखा जा सकता है। उसके अलावा जो पेंटिंग है वो भी रंग-रेखाओं के संयोजन के साथ-साथ आत्मिक चिंतन की ओर ले जाती है।

एलिजाबेथ सेस ब्रूनर इस तरह अपने हुनर में सृजनाममक और भावनात्मक दोनों रूपों में अपनी एक अलग मुकम्मल जगह रखती है। वह अपनी बेटी को प्रेरित करती है लेकिन साथ-साथ उसे उसकी मर्ज़ी से सृजन भी करने देती है। शायद उसने ये इसलिए भी सोचा होगा की जो स्वतन्त्रता का एहसास उसे मिला वही बेटी भी महसूस करे तभी उसकी कला का दायरा कुछ अलग क़िस्म का हो सकेगा। इस विचार से माँ एलिजाबेथ सेस ब्रूनर के पास एक अलग दृष्टिकोण था जिससे दोनों के लिए ही भारत की भूमि अपनत्व और खोज के लिए पूर्णतया उपयुक्त बनी जहाँ सांस्कृतिक, सभ्यता और विविधताओं में कला के गहरे दर्शन और ख़ुद की तलाश एक सुखद आध्यात्मिक अनुभूति महसूस हुई।

एलिजाबेथ ब्रूनर के बनाए व्यक्ति चित्रों में भी एक ख़ास झलक महसूस की जा सकती है। रबींद्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, सरोजनी नायडू, जवाहरलाल नेहरू और दलाई लामा जैसे अनेकों प्रतिष्ठित, विद्वान लोगों के बीच जाकर उनके व्यक्तित्व को अपने केनवास पर चित्रित किया। विशेष रूप से एलिजाबेथ के व्यक्ति चित्रण में आध्यात्मिक पक्ष के स्वर सुनाई देते हैं जो सहज ही आत्मभिव्यक्ति से जुड़ जाते हैं।

एलिजाबेथ इन विशेष प्रतिष्ठित लोगों के बीच हुए परस्पर संवाद को भी एक लेखिका के रूप में अपने अनुभवों के साथ रखती है। अपनी आत्मकथा में माँ सेस ब्रूनर को एलिजाबेथ अपने जीवन में एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में देखती है। एक समर्पित कलाकार, एक दृष्टा और एक मार्गदर्शक जो उसे सदैव जीवन को अपने ढंग से जीने के लिए उत्साहित और प्रेरित करती रही। पिता फेरेक सेस ब्रूनर भी एक चित्रकार थे जो हंगरी में नाग्यकनिज्सा जो कि एलिजाबेथ का होमटाउन था में ही रहे। माता-पिता के शुरुआती जीवन के कुछ ख़ूबसूरत पल वहीं गुजरे जहाँ से बाद में दोनों की कलाओं ने अपने सृजन के लिए भविष्य की अलग-अलग राहें बना ली। नाग्यकनिज्सा में जन्मी एलिजाबेथ को भी चित्रकार माता-पिता के कारण, कला विरासत में मिली। इस माहौल में उसने बचपन से ही अपने को ढाल लिया था। एक समय के बाद दोनों माँ-बेटी ने वहाँ से निकलकर दूसरे देशों की यात्राएँ की जो कठिन थी लेकिन उसे अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति से पार कर लिया। एलिजाबेथ को अपने स्वप्नलोक की छवि शांति निकेतन में दिखाई दी जहाँ उन्हें गुरुदेव रबीन्द्रनाथ का संरक्षण, आश्रय और सृजन का सुख प्राप्त हुआ। हंगरी से पीछे छूटे अपने घर के बाद उन्होंने भारत में रहकर दूसरे घर को महसूस किया। दूसरे अन्य देशों में घूमने के बाद भी जो अपनत्व और प्रेम भारत की भूमि से उन्हें मिला था वह किसी और देश में महसूस नहीं हुआ।

1930 के दशक में शांतिनिकेतन में गुरुदेव के तेजस्वी व्यक्तित्व का दर्शन कर एलिजाबेथ ने अपने चित्रों में उनके सौम्य भावों को चित्रित किया। जहाँ से उसे लगा की महान लोगों की दिनचर्या तथा उनकी कार्य शैली में एक असाधारण व्यक्तित्व छुपा होता है जिसे केवल चित्रित करते हुए नहीं जाना जा सकता। इसके लिए सभी से मिलना और संवाद होना भी ज़रूर है तभी वह भाव-गुण उसके पोर्ट्रेट में आ सकता है।

भारत में शांतिनिकेतन में रबीन्द्रनाथ टैगोर का चित्र एलिजाबेथ के लिए पहला था उनके बाद उन्होंने अन्य कलाकृतियों के साथ-साथ पोर्ट्रेट बनाने का अपना क्रम जारी रखा और अलग-अलग स्थानों का भ्रमण कर अलग-अलग लोगों के व्यक्ति चित्रों की पूरी श्रृंखला तैयार की जिसमें महात्मा गांधी, दलाई लामा, जे

कृष्णमूर्ति, जवाहरलाल नेहरू, सरोजनी नायडू व अनेक राजघरानों से जुड़े व महान हस्तियों के चित्र शामिल हैं। जब वो अपनी माँ के साथ पहली बार महात्मा गांधी से मिली तो उसके मन में उनके व्यक्तित्व को रंगने की एक प्रबल इच्छा हुई किन्तु गांधी जी के जवाब से वह ठिठक कर रह गई। उन्होंने उसे ध्यान से देखते हुए कहा– 'आप मुझ जैसे एक बदसूरत आदमी को क्यों रंगना चाहती हो?' फिर एक मुस्कान से तस्सल्ली दी। एलिजाबेथ ने इस पर उनसे कहा कि आपके शरीर ही नहीं आपकी आत्मा को भी पेंट करना चाहती हूँ। तब बड़े आश्चर्य से गांधी जी ने कहा– ''आपका मतलब है कि आधे घंटे में आप मेरी आत्मा को भी रंग सकती हैं?''। और इस तरह गांधीजी का चित्र बनाने के लिए एलिजाबेथ को उनसे आधे घंटे का ही वक़्त मिला। जो उसके लिए बेहद चुनौती भरा था। आसपास घिरे पत्रकारों की नज़रे उसके कला कौशल में गांधीजी की छवि को देखने के लिए लालायित थी। एक खुले बरामदे में जहाँ गांधी जी कुछ लिखने में व्यस्त थे, एलिजाबेथ और उनकी माँ के अभिवादन का जवाब उन्होंने सिर हिलाकर, एक मुस्कान से दिया और पुनः मौन हो अपने काम में जुट गए। वह नहीं जानती थी कि उस दिन उनका मौन का दिन था। अपनी घड़ी सामने रख उन्होंने कैनवास रंगने का संकेत एलिजाबेथ को दे दिया था। बड़े से गोल चश्मे में नीचे झुके गांधी जी के चेहरे को पेंट करना आसान नहीं था इसलिए वह भी उन्हें बनाने के लिए फर्श पर बैठ गई जिससे गांधीजी को वह पेंट कर पाई। एलिजाबेथ का यह साहस उस समय काफ़ी चर्चित हुआ।

भारत में रहकर एलिजाबेथ 1985 में पद्मश्री से सम्मानित हुई। अपनी माँ की दिखाई राह पर चलकर जहाँ तक वह पहुँची उस राह से उन्हें अनेक पथ–प्रदर्शक मिले और उन्ही अनुभवों से बहुत कुछ सीखते हुए एलिजाबेथ कला–जीवन की गहराई को बहुत क़रीब से जान पाई, उस समय और भी जब माँ इस नश्वर संसार से विदा हो गई, वह स्त्री जिसने उसके स्वप्न को पहचान लिया था कभी और उसको साकार रूप देने के लिए विशाल समुद्र को लाँघते हुए एक लम्बी यात्रा पर निकल गई थी। एक ऐसे घर की तलाश में जहाँ उन्हें अपने ख़्वाब को हक़ीक़त में बदलने का मौक़ा मिल सके। 2 मई 2001 में उन्होंने इस नश्वर संसार को अलविदा कह दिया।

जवाहरलाल नेहरू को दिल्ली (1952) में उनका प्रोर्ट्रेट दिखाती हुई एलिजाबेथ

हर कला में होती है नाटकीयता

मूर्धन्य रंगकर्मी देवेन्द्रराज अंकुर से विनय उपाध्याय की विरल वार्ता

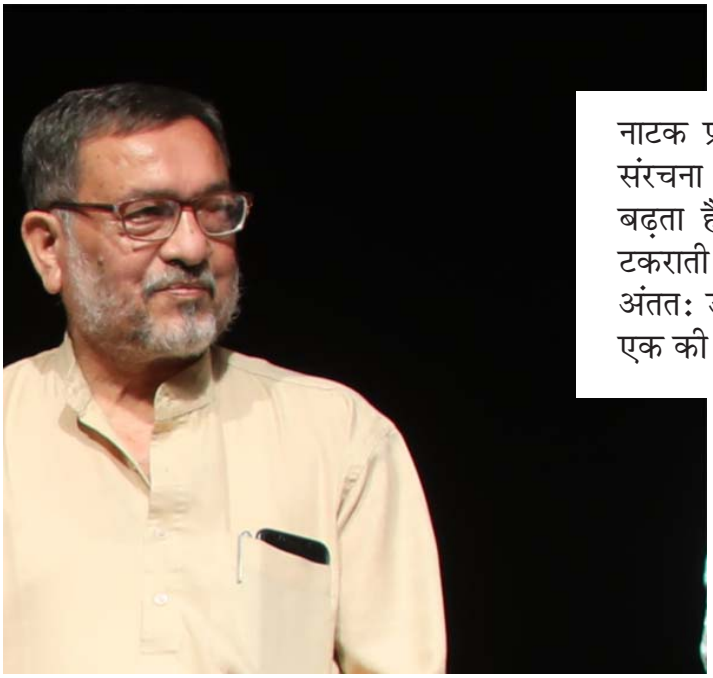

नाटक प्रतिरोध की कला है। किसी भी नाटक की संरचना को उठाकर देख लीजिए। नाटक तभी आगे बढ़ता है जहाँ दो विरोधी विचारधाराएँ आपस में टकराती हैं और वह संघर्ष बहुत दूर तक चलता है। अंततः उसमें से किसी एक की जीत होती है, और एक की हार होती है।

विभूति

हिन्दी के आधुनिक रंग परिसर में उनके पुरूषार्थ की छापें इतनी गहरी हैं कि जीवन और कला के मर्म की पहचान उनके लिए कतई मुश्किल नहीं। इसी बुनियाद पर उनकी सिद्धि-प्रसिद्धि का शिखर खड़ा है। नाटक जैसी लोकप्रिय विधा के आसपास हो रहा विमर्श उनके बिना जैसे अधूरा है। रंगमंच की दुनिया से वाबस्ता भला ऐसा कौन है जो देवेन्द्रराज अंकुर की प्रभुता, सक्रियता, उनकी हैसियत, अहमियत और उपलब्धियों से वाक़िफ़ न हो। लगभग आधी सदी से बदस्तूर जारी उनका कारवाँ हिन्दी के मुख्तलिफ़ इलाक़ों से गुज़रता उन मुक़ामों तक पहुँचा है जहाँ सम्मान और स्वीकार के एक बड़े वृत्त से घिरा हुआ हम उन्हें पाते हैं। वे राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली के निदेशक रहे और शौकिया-संघर्षशील रंगकर्मियों के लिए उदारमन लिए भारत के छोटे शहर-क़स्बों में जाना भी उन्हें गवारा ना रहा। यही सब उनके तर्जुबों में ताक़त भरता रहा। वे कहानी के रंगमंच की सर्वथा नयी विधा के शिल्पी हैं। निर्देशक हैं। लेखक हैं। आलोचक हैं। अनुवादक हैं। रंग अध्येता हैं। रंग गुरू हैं। अपनी बहुमूल्य सलाहों के साथ नए सांस्कृतिक प्रकल्पों में शामिल होते हैं। इधर भोपाल के रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्व विद्यालय में टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की स्थापना और उसकी रंग गतिविधियों के विस्तार में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यायावरी उन्हें रास आती है क्योंकि यहाँ मैत्री और अपनापे के नए सिलसिले बनते हैं। अंकुरजी इन दिनों नाट्य शास्त्र के रचयिता भरतमुनि की अभिनय कल्पना पर एक बड़े शोध में मसरूफ़ है। पिछले दिनों अपने पसंदीदा शहर भोपाल आए तो इत्तफ़ाक़न उनसे हुई मुलाक़ात गुफ़्तगू में बदल गयी। कला समीक्षक, संपादक और टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय से हुआ यह विरल संवाद मौजूदा रंगकर्म की नब्ज़ पर तो हाथ रखता ही है, अंकुरजी जैसी मूर्धन्य रंगविभूति की सर्जनात्मक दृष्टि में शामिल होने का सुख भी देता है।

विनय उपाध्याय– अंकुरजी, क़रीब पाँच दशक की रंग यात्रा हो चुकी है आपकी। लंबी और बीहड़ भी। कई सारे मंज़र। कई तजुर्बे। बेशुमार क़िस्से और किरदार इस सफ़र के हैं। आज वक़्त के इस मुहाने पर जब अपने रंग संसार को देखते हैं तो क्या सोचते हैं? अपनी भूमिका के सांस्कृतिक हस्तक्षेप को किस तरह देखते हैं?

देवेन्द्रराज अंकुर– देखिए, रंगमंच एक जीवंत कला है। और इसमें कोई संदेह नहीं कि जो भी जीवंत कला होगी वो हस्तक्षेप करेगी ही। दूसरा ये कि नाटक प्रतिरोध की कला है। किसी भी नाटक की संरचना को उठाकर देख लीजिए। नाटक तभी आगे बढ़ता है जहाँ दो विरोधी विचारधाराएँ आपस में टकराती हैं और वह संघर्ष बहुत दूर तक चलता है, और अंततः उसमें से किसी एक की जीत होती है, और एक की हार होती है। चाहे आप पश्चिम में जाये या फिर हमारे यहाँ के नाटको में चले जायें। मैं समझता हूँ कि हस्तक्षेप की इसी भूमिका को कि उसको यथा स्थिति कि जैसे का तैसा अगर वह स्वीकार करने लगेगा। तो मैं समझता हूँ कि इससे बड़ी त्रासदी रंगमंच के लिए और कोई नहीं होने वाली कि जब तक उसमें यह गुण मौजूद है।

किसी भी कलाकार के लिए विशेषकर रंगकर्मी के लिए चयन का बहुत ही गहरा प्रश्न है। क्या वह सत्ता से जुड़कर अपने माध्यम में काम करें? या कि वह सत्ता से बाहर रहकर अपने माध्यम में काम करे? यह जो चयन है इसके बारे में हमें हमेशा जागरूक रहना होगा और अगर सत्ता से भी जुड़ना है, तब भी। फिर वह उस माध्यम की जो मूल प्रकृति है, किस हद तक वो प्रतिरोध के रास्ते उसे अपनाकर काम कर सकता है।

नाटक भी ललित कला है लेकिन अन्य कला माध्यमों की तुलना में वह अधिक वाचाल है। जनता के रूबरू, उनके बीच जाकर संवाद करता है नाटक। आपकी बात जोड़कर कहूँ तो उसकी आवाज़ प्रतिरोध की आवाज़ है। क्या मौजूदा परिस्थितियों में नाटक सच्चे प्रतिरोध की आवाज़ रह गया है? क्या वह अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारी ठीक से निभा रहा है?

– हम अगर थोड़ा सा पीछे लौट जाएँ 1942 के आसपास जब पूरा देश आज़ादी की लड़ाई में लगा हुआ था, तब कलाकारों के मन में भी, जो अलग–अलग क्षेत्रों में काम कर रहे थे, रंगमंच में, चित्रकला में, संगीतकला में, नृत्यकला में, शिल्पकला में, तो उनके सामने भी यह सवाल आया था। क्या कलाकार अपनी ही दुनिया में लिप्त होकर अपना अपना काम करता रहे? या कि उसकी भी कोई सामाजिक ज़िम्मेदारी है? या कि उसकी भी एक भूमिका होनी चाहिए? और आज़ादी की लड़ाई जैसा एक इतना बड़ा मुद्दा पूरे देश के सामने है। तो वहीं उस दौर में इंडियन पिपुल्स थियेटर एसोसिएशन का जन्म हुआ। मैं समझता हूँ कि इस तरह का पार्टिशिपेशन, इस तरह की प्रतिभागिता, इस तरह का आपस में मिलजुलकर अपने रास्ते बनाना। सभी माध्यम के लोग एक जगह पर आये। और उन्होंने अपने–अपने माध्यम में जो भी वो काम कर रहे थे। चित्रकार, चित्रकला के माध्यम से जो भी चित्र थे उनको बेचकर जो पैसा वो आज़ादी की लड़ाई में लगाना है, नाटक वाले लोग अपने हिसाब से कर रहे थे। आज भी मैं समझता हूँ कि इस पर बहुत बहुत ज़्यादा ज़रूरत है लेकिन यहीं पर चुनाव का प्रश्न है। यह सवाल ख़ासकर नाटक में काम करने वाले आदमी के लिए या कलाकार के लिए बहुत ही गहरा चयन का प्रश्न है। क्या वह सत्ता से जुड़कर अपने माध्यम में काम करें! या कि वह सत्ता से बाहर रहकर अपने माध्यम में काम करे! यह जो चयन है इसके बारे में हमें हमेशा जागरूक रहना होगा और अगर सत्ता से भी जुड़ना है, तब भी फिर वह उस माध्यम की जो मूल प्रकृति है, जिसको मैंने कहा था कि किस हद तक वो प्रतिरोध के रास्ते से अपना काम कर सकता है, उसके विचार के बारे में भी हमें गंभीरता से सोचना होगा।

आपके जीवन वृत्त को देखते हुए एक सवाल अचानक मन में उठा है कि हिन्दी आपकी अभिव्यक्ति की ज़मीन रही। आप हिन्दी में ही एम.ए. है। साहित्य में भी आपकी रूचियाँ गहरी हैं। आपने नाटकों पर शोध किया, किताबें भी लिखीं लेकिन साहित्य को ही पूर्णकालिक पेशा नहीं बनाया। कई विधाएँ सामने थीं। नाटक में ही पनाह पायी, क्यों?

– आमतौर पर जैसा हर विद्यार्थी के साथ होता है। बहुत छोटी उम्र में ही वाद-विवाद प्रतियोगिता, कविता प्रतियोगिता, कहानी प्रतियोगिता उसी में फिर एक उम्र में आकर नाटकों को देखने और फिर उनको देखकर ख़ुद करने की इच्छा पैदा हुई। और कम से कम तीन प्राध्यापक मुझे ऐसे मिले, आज तक के समय में जो स्वयं भी इसी माध्यम में ज़्यादा काम करने में रुचि रखते थे। एक तो आठवीं क्लास में बहुत ही छोटे से क़स्बे में पढ़ाई कर रहा था। 8वीं और 9वीं क्लास की पढ़ाई के दौरान सुरेंद्र नाथ सक्सेना नाम के प्राध्यापक थें। वे हमें नागरिक शास्त्र पढ़ाने के लिए आए। सांस्कृतिक गतिविधियों में उनकी ज़बरदस्त रुचि थी। ख़ुद नाटक लिखना और हम सब छात्रों को इकट्ठा करके नाटकों को करवाना। वहाँ से एक पहली शुरुआत हुई। फिर कॉलेज में गये। वहाँ अंग्रेज़ी विभाग में अखिलेश्वर झा जिन्होंने 'जनपथ किस नाम से' बहुत मशहूर उपन्यास लिखा। जिस पर हमारे रंगकर्मी दोस्त रंजीत कपूर ने बहुत ही अच्छा प्रोडक्शन तैयार किया जो बहुत चला। जो बहुत दिनों तक चला। कॉलेज में जो भी ड्रामेटिक सोसायटी होती है वो उनके इंचार्ज थे। तो उनके साथ जुड़ गयें। वहाँ इसको थोड़ा और ग्रोथ मिला। फिर जो सबसे बड़ा परिवर्तन आया। सिक्सटी सेवन में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से कुछ लोग ओम शिवपुरी, सुधा शिवपुरी, बोमन महर्षि और रामगोपाल बजाज ये लोग, बाहर आकर इन लोगों ने 'दिशांतर' नाम की अपनी एक संस्था बनाई। और इनको एक बड़े से प्रोडक्शन के लिए बहुत से लोग चाहिए थे। हम तब तक विश्वविद्यालय में आ चुके थे। एम.ए. प्रीविएस कर रहे थे। हमारा सहपाठी था दिनेश ठाकुर, जो पहले से ही दिल्ली रंगमंच में सक्रिय था, रेडियो पर और रंगमंच पर। तो उसके साथ-साथ मैं भी चला गया। वो लोग चार नाटक एक साथ तैयार कर रहे थे। 'गण देवता', 'तुग़लक़', 'कंजूस' और 'सुनो जनमेजय'। उस दौरान उनके सारे नाटक को करने की प्रक्रिया को देखने का मौक़ा मिला। उससे पहले क्या होता था कि मंच पर खड़े हो गए। प्राध्यापक ने कहा लाइने बोलना हैं, कभी इधर से उधर चले गये। जो भी कपड़े घर से मिले वो ले आये वो पहन लिए।

तो वह आपका पहला-पहला तजुर्बा था। वहीं से दिलचस्पी जागी और फिर बाद में रंगमंच के शास्त्र को समझने की दिशा मिली। ज़ाहिर है यह सब काम ही आया।

– तब ये लगा कि यह भी एक मेथड हो सकता है। ये लाइने क्यों बोली जा रही हैं? हर छोटे से छोटे संवाद में क्या अर्थ है? हर छोटी से छोटी बातचीत का क्यों इस्तेमाल किया जा रहा है?

विधाएँ तो कई सारी थीं, आपने निर्देशन ही क्यों चुना?

– मैं शुरू से प्राध्यापक बनना चाहता था। अगर मैं रंगमंच में न आया होता तो प्रधायपन कर रहा होता। मुझे तीन विषयों में बहुत रुचि थी। गणित, अंग्रेज़ी और हिन्दी। बाद में गणित तो बहुत पीछे छूट गया और अंग्रेज़ी एक तरह से मुख्यधारा में नहीं रहा। हिन्दी में ऑनर्स किया, हिन्दी में एम.ए. किया। ज़ाहिर था कि हिन्दी में प्राध्यापन करना है। निर्देशन भी एक तरह का मूल रूप से उसमें भी प्राध्यापन के गुण मौजूद है। आप सिखाते हैं। आप गाइड करते हैं। लोगों को लेकर चलते हैं। यह पहले से बहुत साफ़ था।

संगत और संवाद ..... अंकुर जी और विनय उपाध्याय

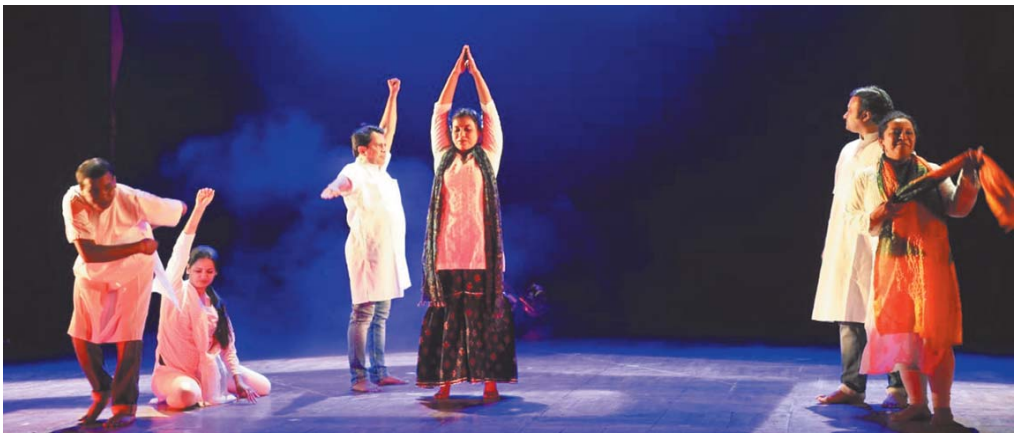

अंकुरजी द्वारा निर्देशित संतोष चौबे की कहानी 'नौ बिंदुओं का खेल' का रंग प्रयोग

यह जो स्किल है निर्देशन का आपने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में रहते और समानांतर अन्य संस्थाओं के साथ, अपनी संस्था 'सम्भव' के साथ काम करते हुए विकसित किया। लेकिन अंकुर जी, आधुनिक रंगमंच को जो एक महत्वपूर्ण सौगात आपने दी वो कहानियों के रंगमंच की है। यूँ तो हम दर्शक के रूप में, रसिक के रूप में जानते हैं कि हर नाटक में एक कथानक होता ही है लेकिन कहानी के रंगमंच को एक नई विधा के रूप में आपने प्रतिष्ठित किया। क्या नज़रिया था आपका?

– नज़रिया कुछ नहीं था। मेरा कहानियों से बहुत शुरू से ताल्लुक़ रहा है। पढ़ने का बहुत शौक़ था। जितनी किताबें लाइब्रेरी में या जहाँ से मिलती थी पत्रिकाओं में, एक छोटी उम्र में या घरों में बड़ों से कहानियाँ सुनते थे। तो वो कहीं न कहीं जुड़ा रहा गया। फिर जब एमए में पहुँचे तो हम लोगों को एक डेजेटरेशन करना होता था। तो मेरा विषय सन् साठ के बाद कि हिंदी कहानी था तो उस दौरान और पढ़ा तो मुझे लगा कि फिर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का प्रशिक्षण भी शामिल हो गया। जब बाहर आये अब ये पता नहीं कैसे भटकते हुए फ्रीलांसिग करते हुए और उस पूरे मंडी हाउस में चक्कर लगाते हुए एक विचार कौंधा कि कहानी जैसे लिखी गयी है उसको बिना बदले, बिना नाट्यरूपांतरण करके क्या रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है?

मतलब जिसे कहते हैं कि अपने आप से चुनौती थी यह।

– 1975 में मैं राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय रंगमंडल में एक साल था। वहाँ मुझे यह मौक़ा मिला कि निर्मल वर्मा की तीन कहानियों को मंच पर प्रस्तुत किया जाये। 'तीन एकांत' के नाम से बाद में वह छप भी गयी किताब के रूप में। मुझे आज भी याद है 1 मई 1975 में उसका हमारे स्टूडियो थिएटर में पहला मंचन हुआ। लोग भी चौंक गये। उन्होंने भी शायद ऐसा नहीं देखा था कि थर्ड पर्सन में एक आदमी अपने बारे में बोल रहा है। या फर्स्ट पर्सन में बोल रहा है। और एक-एक नैरेटिव डिटेल उसमें शामिल है। और फिर जो कुछ भी उसमें बोल रहा है उसको भी नहीं दिखाया जा रहा है। अगर इलस्ट्रेशन होगा फिर आप उसमें नया क्या कर रहें हैं? मंच लगभग ख़ाली है। यह आज ख़ाली नहीं है। पहली प्रस्तुति की थी उसमें भी एक कहानी में दो मेज और दो कुर्सियाँ थीं। और एक कहानी में दो बेंचें थीं। बस, इससे ज़्यादा कुछ नहीं था।

लेकिन आमतौर पर दर्शक बाक़ायदा यथार्थवादी मंच सज्जा के बीच नाटक देखने का आदी रहा है। आप कोरे या लगभग खाली मंच पर नाम मात्र की मंच सामग्री का इस्तेमाल करते हुए कहानियों को वहाँ ले गये। दर्शकों का क्या रिएक्शन रहा?

– आज 47-48 साल हो गए हैं, लगातार मैं इस काम को कर रहा हूँ। 48वाँ साल शुरू हो चुका है। यह सिर्फ़ दर्शकों की उत्साहवर्धक प्रतिक्रिया का ही नतीजा है कि लगातार हम इस काम को कर रहे हैं। वो नाटकों को देखते आ रहे थे। फिर फ़िल्में आ गईं उनको देखने लगे। फिर टेलीविज़न आ गया उनको देखने लगे। वह यहाँ पर एक ऐसे माध्यम को मंच पर देख रहे हैं जिसको वो कभी सुनते थे। फिर जब प्रकाशित होने लगा तो वो उसको पढ़ने लगे। अब जब उसको उसी फॉर्म में जिस फॉर्म में जिस तरह से लिखा हुआ है उसको होते हुए देख रहे हैं, तो उनकी प्रतिक्रिया थी कि ये कहीं फ़िल्म टेलिविजन और रंगमंच इन सबका एक संगम सा दिखाई पड़ता है। हमें कभी लगता है कि हम दूरदर्शन देख रहें हैं। कभी लगता है कि फ़िल्म देख रहे हैं। तो ये उनकी प्रतिक्रिया है। और मुझे बहुत अच्छा लगा। मैं कलकत्ता गया 1982 में। वहाँ के लेखकों की दो कहानियाँ बंगाली में की। तो जिन्होंनें मेरे साथ काम किया, जो दर्शक थे, उन्होंने कहा कि

सर हम थर्ड थियेटर तक तो सुना था बादल सरकार का। अब इसको क्या नाम दिया जाए? क्या हम इसको फोर्थ थियेटर कह सकते हैं? मैनें कहा मैं तो इसको कहानी का रंगमंच कहता हूँ। अर्थात कहानी, कहानी रहते हुए कितनी दूर तक रंगमंचीय अनुभव में जा सकती है। इसीलिए उसका नाम 'कहानी का रंगमंच' है।

नाट्य मंचन के लिए कहानी चयन की क्या दृष्टि होती है आपकी? इस सवाल के साथ कथाकार वनमालीजी का कहा याद करना चाहूँगा जिसमें वे कहानी में नाट्य तत्वों का होना आवश्यक मानते थे।

– सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जो बात कहानी में कही गयी है, वह कहीं न कहीं आपको अंदर तक भेदने वाली होनी चाहिए। वह आपके लिए कोई सवाल उठाती हो और अगर वह मेरे लिए सवाल उठा रही है तो मुझे विश्वास है कि वह दर्शकों के लिए भी सवाल उठाएगी। उनके साथ भी जुड़ेगी। तो यह पहला सवाल है। फिर क्या है कि जिस भी लेखक को आप चुन रहे हैं, आप उसकी सारी रचनाओं को पढ़ने की कोशिश करते हैं और पूरे समूह के साथ मिलकर उसमें से कभी तीन, कभी दो या कभी एक जैसा भी जहाँ जो अपेक्षाएँ हैं उसको फाइनली चुनकर प्रस्तुत करते हैं। तो पहले तो यही है कि वो कविता भी है 'वह बात बोलेगी' शमशेर जी की है तो वो मैं एक कहानी में देखता हूँ। सवाल रहा नाटकीयता तो हर कला विधा में होती है। लेकिन ज़रूरी नहीं कि वह नाटक हो। यह तो बड़ा मशहूर कथन है किसी बड़े राइटर का। वह तो अपने आप में शामिल हो जाएगा। जब कहानी आपको अच्छी लग रही है। आपके दिल को छू गयी है तो फिर वह दिमाग तक भी पहुँचेगी। कहना चाहिए कि उसका एक सार्थक संवाद सबके साथ बढ़ेगा।

नाटकीयता तो हर कला विधा में होती है। लेकिन ज़रूरी नहीं कि वह नाटक हो। जब कहानी आपको अच्छी लग रही है। आपके दिल को छू गयी है तो फिर वह दिमाग तक भी पहुँचेगी। कहना चाहिए कि उसका एक सार्थक संवाद सबके साथ बढ़ेगा। यही नाटकीयता है।

बात कहानियों की चल रही है, उसके प्रयोग की हो रही है और संयोग से यह संवाद भोपाल के आईसेक्ट स्टुडियो में हो रहा है तो अनायास संतोष चौबे की कहानियाँ याद आती हैं– 'ग़रीब नवाज़', 'नौ बिंदुओं का खेल' और 'सतह पर तैरती उदासी'। इन तीनों कहानियों का नेचर अलग है। आपने इन तीनों कहानियों के नाट्य प्रयोग किये हैं। भोपाल, पंजाब, बिहार, झारखंड आदि जगहों पर इसके मंचन हुए हैं। क्या अनुभव रहा आपका और दर्शकों का?

– जब पहली बार उनकी कहानियों को करने की बात आयी, तो उनकी लगभग दस कहानियाँ हम लोगों ने पढ़ी। उस दौर में भी 'नौ बिंदुओं का खेल' और 'ग़रीब नवाज़' शॉर्टलिस्ट हुईं। चूँकि उस दौर में ज़्यादातर लोग बाहर थे हमारे और कुछ कम ही लोग हमारे पास थे। हमें लगा कि पहले ग़रीब नवाज़ कर लेते हैं और उसको हमने ख़ूब मन लगाकर तैयार किया। आमतौर पर क्या होता है कि मैं अपने अभिनेताओं से अपेक्षा करता हूँ कि वे उनमें निहित बिंदुओं को वो उसमें निहित दृश्यावली को उभार कर लायें। लेकिन इस कहानी का अनुभव मुझे आज भी याद है कि लोग मुकर गये। कहने लगे अंकुर जी! इस बार चाहते हैं हम कि आप इसको तय कीजिये कि इसमें क्या होना चाहिए। और बाद में हम मज़ाक करते हैं कि आप देख लो जिसमें मैंने किया वही सबसे ज़्यादा पॉपुलर हो गयी। ईमानदारी से कहूँ तो हम पहले प्रदर्शन यहाँ करने के लिए आये थे। और हम सोच रहे थे कि ठीक है इसके बाद इसको करने का मौक़ा मिले या न मिले। लेकिन वह दिन और आज का दिन 7–8 साल तो हो चुके हैं इस कहानी को किये हुए। इसकी डिमांड लगातार बनी हुई है। क्यों बनी है क्योंकि पर्यावरण की समस्याएँ, अतिक्रमण की समस्याएँ ये हमारी अपनी रोजमर्रा में शामिल है। तो कहानी बनती चली गयी। पाँच लोगों की वेलनेट कास्ट और उसमें मैं छठा हो गया। एक संगीत वाला आदमी और एक प्रकाश वाला आदमी। कहानी मंचन का डिज़ाइन इतना फ्री फ्लो में चलता है कि लोग मज़ाक करते हैं, ''अच्छा आप अपना सामान वगैरह समेट लीजिए प्रस्तुति के बाद''...

इधर कुछ बरसों में सरकारी और ग़ैर सरकारी स्तर पर नाट्य विद्यालयों की स्थापना हुई है। दूसरी ओर शौक़िया या कहें कि ग़ैर व्यावसायिक नाट्य संस्थाओं की भी बाढ़ सी आ गयी। आप वो शख़्सियत हैं जिन्होंने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, एन.एस.डी. की बागडोर भी सम्हाली है और 'संभव' जैसे अशासकीय रंग समूह का संचालन भी दिल्ली में कर रहे हैं। इस विस्तार या उत्साह को कितना सुगढ़ और सार्थक मानते हैं?

– देखिये! बाक़ी सारी कलाओं के विद्यालय बहुत पहले से हैं। चित्रकला के विद्यालय, संगीत के विद्यालय, नृत्य के विद्यालय, न जाने कब से हमारे यहाँ पर संचालित हैं। इंदिरा कला संगीत, कला विश्वविद्यालय को छोड़ दीजिए। बहुत साल हो गए उसको। लेकिन नाटक की जगह कितनी है? आमतौर पर यह मान लिया गया कि अभिनय कला को सीखने की ज़रूरत नहीं है, यह तो आ जाती है, यह एक भ्रम बना हुआ है। ऐसा बिल्कुल नहीं है। जब हम मंच पर होते हैं, हम अपने जीवन को प्रस्तुत नहीं कर रहे होते हैं। जीवन से प्रेरित अवश्य होते हैं लेकिन वह हू-ब-हू न तो हमारा जीवन हो सकता है और न ही होना चाहिए। हम आपको देखना चाहते हैं और वही उसका कमाल है अभिनय कला का। इसको सीखना पड़ता है। तीन गुण हैं नाट्य विद्यालय जिन पर कंसंट्रेट करते हैं। हर अभिनेता में अगर यह नहीं है तो वह अच्छा अभिनेता बन ही नहीं सकता। सबसे पहले तो उसके ज़िन्दगी का ऑब्जरबेशन बहुत स्ट्रॉन्ग होना चाहिए। दूसरे लोगों की ज़िंदगी, दूसरे लोगों का रहन-सहन, अपने आसपास जब चाहे वह उनमें से कुछ लेकर अपने नाटक में इस्तेमाल कर सकता है। हो सकता है किसी के पास यह नहीं है। फिर उसकी कल्पनाशक्ति इमेजिनेशन बहुत स्ट्रॉन्ग होनी चाहिए। कि वह कुछ भी क्रिएट कर सकता है। माने ये दोनों भी है लेकिन उसके पास सबसे ज़्यादा एग्जीक्यूशन कि उसको करना कैसे है, ये जब तक नहीं आता तब तक सारे गुणों का कोई फ़ायदा नहीं। इसलिए वो कला बन जाती है। अभिनय और हर कला को सीखना पड़ता है। अब ज़रूरी नहीं कि आप विद्यालय में ही सीखें। जब विद्यालय नहीं थे तब संस्थाओं में लोग सीखते थे। किसी संस्था में नए-नए लोग दाख़िल होते थे। वो दूसरे लोगों का काम देखकर सीखते थे। आज जब विधिवत विद्यालय आ गये तो उसका एक सिस्टम बन गया। और यह बहुत ख़ुशी की बात है कि टैगोर विश्वविद्यालय की स्थापना हुई और उन्होंने सबसे पहले इस बारे में सोचा कि टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की नाटक जैसी विधा को पहले नम्बर पर रखना चाहिए। दूसरी कलाएँ जब आएँगी तब आएँगी, लेकिन नाटक जैसी विधा को पहले नम्बर पर रखा।

भारत सरकार की नई शिक्षा नीति में भारत की पारंपरिक कलाओं या कहें कि प्राचीन ज्ञान परंपराओं का विशेष संदर्भ लेकर उनके अध्ययन-अध्यापन पर ज़ोर दिया गया है। ऐसे में जब बात नाट्य शिक्षा की आती है तो परिदृश्य में बहुत सी विसंगतियाँ दिखाई देती हैं। अव्वल तो प्रशिक्षित अध्यापकों की ही कमी है।

– बहुत ठीक कहा विनय तुमने। ये ज़्यादा इम्पोर्टेन्ट है कि प्राध्यापक बनने की दिशा में हम तब ही आगे बढ़ सकते हैं जब रंगमंच एक विषय के रूप में स्कूली एजुकेशन हिस्सा बनेगा। आप देखिए संगीत एक सब्जेक्ट के रूप में आता है। चित्रकला भी एक सब्जेक्ट के रूप में है। काफ़ी हद तक नृत्य कला भी स्कूली शिक्षा का हिस्सा है। लेकिन रंगमंच आज तक सिवाय 15 अगस्त, 26 जनवरी को एक नाटक करना है या

देवेन्द्रराज अंकुर द्वारा निर्देशित संतोष चौबे की कहानी 'सतह पर तैरती उदासी' का भोपाल में रंग प्रयोग

कोई और वैसा ऑकेजन आ गया उस पर करके हम लोग अपनी ज़िम्मेदारी से मुक्त हो जाते हैं। उसको लाना पड़ेगा एक विषय के रूप में। लेकिन प्राध्यापन के क्षेत्र में जाना बहुत ज़रूरी है। इसीलिए पहली शर्त यही है कि स्कूल खुल रहे हैं कॉलेजों में यूनिवर्सिटीज में दूसरे विभाग आ रहे हैं लेकिन आगे भविष्य क्या है? इसका भविष्य तभी बनेगा जब स्कूल-कॉलेजों में नाटक एक विषय के रूप में आएगा। फिर उनको पढ़ाने वाले प्राध्यापक चाहिए। तो फिर वो प्राध्यापक उनकी अपेक्षाओं को पूरा करेंगे जो विषय है। कलाकार निकल रहे हैं तो हर विद्यालय के साथ एक रंगमंडल की परिकल्पना अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। उसके बारे में हमें सोचना है। जैसे राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली के साथ जो 1959 में शुरू हुआ तो 1964 से रंगमंडल छोटे रूप में आया। फिर धीरे-धीरे बड़े रूप में और आज उसमें चौबीस-पच्चीस कलाकार काम कर रहे हैं। उनका दूसरा विंग है थियेटर इन एजुकेशन का। चौबीस-पच्चीस लोग उसमें काम कर रहे हैं। मैं समझता हूँ कि यह बहुत ज़रूरी है।

अंकुरजी, हमारे शुरूआती सवाल-जवाब में नाटक की सामाजिक-सांस्कृतिक भूमिका का मुद्दा आया है। लेकिन इधर तो अपने बुनियादी लक्ष्य से भटककर ज़्यादा रंगकर्मी सरकारी प्रोजेक्ट हथियाने और पैसा कमाने की तिकड़मों में अधिक मसरूफ़ नज़र आते हैं? कहाँ गयी प्रतिबद्धता?

– मैं आपसे शत-प्रतिशत सहमत हूँ। हम लोगों ने उस दौर में काम करना शुरू किया था जब कोई ग्रांट्स नहीं थी। सरकार की कोई रेपर्टरी नहीं थी। और हमें याद है तब भी हम लोग रंगमंच कर रहे थे। ज़्यादा शिद्दत के साथ कर रहे थे। ज़्यादा जीवंतता से कर रहे थे। आज आर्थिक संसाधन आपको मिल रहे हैं तो आपका जो काम करने की इच्छा होती थी वह बहुत मरती जा रही है। अब आप काम चलाऊँ काम ज़्यादा कर रहे हैं। काग़ज़ भर रहे हैं। खाना पूरी कर रहें। मुझे लगता है यह बहुत ख़तरा है। इसको रिव्यु किया जाना चाहिए। मैं तो बड़ी ख़ुशी से भी कहता हूँ और कभी-कभी गर्व भी महसूस होता है कि आज तक हम लोगों को उस रास्ते पर जाने की ज़रूरत नहीं पड़ी। लेकिन हम लगातार काम कर रहे हैं।

सर, ये समय का, जेनेरेशन का फ़र्क़ है। आपके संस्कार जुदा रहे। लक्ष्य और चुनौतियाँ भी अलग रहे। यह दौड़ का, होड़ का दौर है। वर्चस्व का है। रिझाने का है। तकनीक ने भी तो हमारा सामाजिक ताना-बाना कितना बदल दिया। नाटक पर भी असर होना स्वाभाविक ही है। आप क्या सोचते हैं?

– मैं समझता हूँ कि आज के रंगकर्मी को इसके बारे में बहुत गंभीरता से सोचना चाहिए। अगर उसको फ़िल्म में जाना है तब उसको वह निर्णय तुरंत कर लेना चाहिए। नाटक को स्टेपिंग स्टोन की तरह अगर वह ना इस्तेमाल करे तो ज़्यादा अच्छा है। क्योंकि फिर उसको जीरो से शुरू करना पड़ता है। जितने भी अच्छे लोग गये एनएसडी में वो शुरुआती दौर में हीं निकल गए। आप देखें कि नसीर उद्दीन शाह ने तीन बरस प्रशिक्षण लिया और उस दौर में तो कोई ओपनिंग्स भी नहीं थी। तो उसने दो साल फ़िल्म इंस्टीट्यूट में प्रशिक्षण लिया। तब वह सीधे मुंबई गया। यह अलग बात है कि उसने अपनी अंदर की जो रंगमंच करने की चाह है लगातार उसको बचाकर रखा है और मैं अकेला ऐसा फ़िल्म एक्टर देखता हूँ जो पिछले चालीस-पचास साल से अपनी संस्था भी चला रहा। वह कहता है कि मुझे जिजीविषा रंगमंच से मिलती है। पैसा फ़िल्मों से मिलता है। तो मेरा दोनों तरह से काम हो रहा है।

जी ठीक कहा आपने दोनों ही माध्यमों में समान दिलचस्पी के साथ काम करना और अपने आपको सस्टेन करना, यह माद्दा नसीरूद्दीन शाह जैसे लोग ही पाते हैं। तो यह एक मैसेज भी है रंगकर्मियों की आने वाली जेनेरेशन के लिए। ... अंकुर जी बस आख़िरी सवाल। इन दिनों आप किस प्रोजेक्ट पर काम कर रहे हैं?

– ज़्यादा समय निकालना तो लगातार मुश्किल हो रहा है। टैगोर फेलोशिप के तहत काम कर रहा हूँ। काम के आख़िरी छह महीने बचे हैं। विषय 'भरतमुनि की अभिनय परिकल्पना' है। मैं इसे एक सैद्धान्तिक रूप में नहीं देखता। बिल्कुल व्यावहारिक विषय है। आजकल के रंगकर्मी के साथ वह किस तरह से जुड़ सकता है इस पर काम कर रहा हूँ। उसकी तीन किस्तें पूरी हो चुकी है। एक किस्त और बची है। इस साल के अंत तक उसको पूरा करना है। मुझे आशा है कि लोग रिस्पांड करेंगे। अभिनय वाले पक्ष को लेकर मैंने एक नए दृष्टिकोण से विचार किया गया है। कुछ और पुस्तकों पर भी काम चल रहा है। इधर संस्मरणों में मन रम रहा है। आधी सदी में बहुत सारा ऐसा है जिसे याद करना चाहूँगा। चार जून को मेरा जन्म दिन होता है। कोशिश रहती है कि उस दिन कोई न कोई किताब आ जाए।

कहाँ खो गई हिन्दी की हुँकार?

मुरलीधर चाँदनीवाला

इस सदी के बच्चों को भरोसा भी नहीं हो सकता कि पिछली पीढ़ियाँ आल्हा-ऊदल के क़िस्से सुनते हुए और आल्हा गान सुनते हुए बड़ी हुई थीं। बैसवाड़े और बुन्देलखंड के भूगोल से वे चौपालें कब लापता हो गईं, अब कोई नहीं जानता, जहाँ कभी वीरगाथाएँ गा-गा कर हिन्दी इतराती फिरती थी, और वह लोक-जीवन के हृदय में गहराई तक उतर चुकी थी। चंदबरदाई का नाम खो गया हमसे और उनका 'पृथ्वीराज रासो' कितने हिन्दी-प्रेमी अब छू कर भी देख पाते होंगे? बारहवीं सदी के अमीर ख़ुसरो भुला दिये गये, जिन्होंने निज़ामुद्दीन औलिया के शागिर्द रहते हुए पहली बार खड़ी बोली की मज़बूत नींव रखी। हम इतने कृतघ्न कैसे हो गये, कि जुलाहा को कबीर और चर्मकार को रैदास बनाने वाली हिन्दी की सुध लेने का समय हमारे पास नहीं। राजपुताने की साम्राज्ञी मीरा को जिस हिन्दी ने लोक-लाज छोड़ कर जन-जन के बीच ला कर खड़ा कर दिया, उस हिन्दी को सहलाने का मन क्यों नहीं होता हमारा।

हिन्दी को हथियार बनाकर आज़ादी हासिल कर लेने वाले हम भारतीयों पर हिन्दी के प्रति कृतघ्न कहलाने का ऐसा कलंक लगा हुआ है, जिसे धो डालने की पुरज़ोर कोशिश कभी नहीं हुई। एक हज़ार साल के संघर्ष भरे इतिहास की ओर मुड़ कर जब भी हिन्दी अपना चेहरा देखती है, तब उन घावों को देख कर सिहर जाती है, जो उसे और किसी ने नहीं, हमने ही दिये। प्राकृत हो या अपभ्रंश, डिंगल हो या पिंगल, वह थी तो हिन्दी ही जो तांत्रिकों, सिद्धों, बौद्धों और राजपुतानों की आवाज़ बनी। हिन्दी ने विप्लव देखे, विद्रोह देखे, राजाओं के भोग-विलास देखे, सम्प्रदायों की आपसी लड़ाइयाँ देखी। इन सबके बावजूद वह धूल-मिट्टी में खेलती-कूदती बड़ी हुई।

मुहम्मद गौरी, ग़ुलाम वंश, खिलजी और तुग़लक़ राजवंशों के दौर में हमारी मातृभाषा हिन्दी ने कैसे दिन गुज़ारे हैं, हिन्दी के सपूतों को अंदाज़ा भी नहीं। मुग़लों के आक्रमण होते रहे, हिन्दी अपनी बेचैनी को, अपने त्रास को कविता में ढाल कर तब लोगों के बीच ले गई, जब बंदिशें थीं, धार्मिक और राजनैतिक कट्टरताएँ हिन्दी के प्रति अंधी और बहरी हो चुकी थी। हिन्दी को बड़ा सहारा दिया उन संत-सम्प्रदायों ने, जिसमें रामानंद थे, वल्लभाचार्य थे और वे महान् सूफ़ी संत थे, जिनका क़र्ज़ है हमारे माथे पर। जायसी आये अपना 'पद्मावत' ले कर। ब्रज और अवधी ने मिल कर हिन्दी का स्वर्णयुग उस दौर में बनाया, जब हमारी ज़ुबानों पर ताले लगे हुए थे और ज़िंदगी कसमसा रही थी। हिन्दू और मुसलमानों के बीच कबीर की रमैनी, सबद और साखियाँ जादू करती थीं। कबीर ने समाज-सुधार का दायित्व उठाया, आडम्बरों को धोया, राम और रहीम को एक किया और वह सपना जगाया, जिससे दो दिलों की दूरियाँ ख़त्म हो। सोच कर तो देखिए, सिक्खों के धर्मगुरु नानकदेव हिन्दी के कवि थे। यकीन नहीं होता, कि गुरुग्रंथ साहिब ही वह हिन्दी का पहला और बड़ा काव्य संग्रह है, जिसमें एक साथ कबीर, रैदास, मीरा, तुलसीदास, सूरदास और रसखान सहित अनेक कवियों के सुंदर पद संकलित हैं।

सिक्खों ने हिन्दी का जो गौरव बढ़ाया, उसकी मिसाल ढूँढने पर भी नहीं मिलेगी। केशवदास, यारी साहब, पलटू साहब, भीखा साहब, सहजोबाई, मलूकदास और दादू सहित अनगिनत नाम हैं, जिन्हें याद रखने की तकलीफ़ हम नहीं उठाना चाहते, लेकिन हमें यह तो याद रखना होगा, कि ये ही वे संत थे, जिन्होंने हमें आज तक बोले जाने वाले हिन्दी के शब्द दिये, हमें पहचान दी। संस्कृत में रचित वाल्मीकि की रामायण के रहते हुए भी तुलसीदास ने रामचरित मानस लिखने का बीड़ा उठाया, तो सिर्फ़ इसलिये कि उनके पास समय की धार थी और वे भाषा, बोली की ताक़त अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने हिन्दी से ही युग बदल दिया, समाज में उजाला फैलाया। तुलसीदास चाहते, तो पूरी की पूरी रामकथा संस्कृत में दोहरा सकते थे, किन्तु तब उनकी अवधी शिखर तक कैसे पहुँचती। आज अवधी में लिखे उनके दोहे और चौपाइयों का दुनिया पर राज है। बरसों तक सूर और मीरा के साथ बिहारी, रहीम, घनानंद, सेनापति, पद्माकर, भूषण, वृन्द, मतिराम, भिखारीदास और विद्यापति के गीत हमारी साँसों के साथ उतरते-चढ़ते रहे। यह बहुत पुरानी बात नहीं, अभी कुछ ही बरस पहले तक हिन्दी के इन कवियों की बातों का हमारे घर-परिवारों में वही सम्मान था, जो पुरखों की कही हुई बातों का होता है।

पूरे देश के नेता, अभिनेता, पत्रकार, वैज्ञानिक, उद्योगपति, बुद्धजीवी हिन्दी बोल रहे हैं, समझ रहे हैं, लेकिन हिन्दी को वाजिब सम्मान देने की बात पर मुँह फेर लेते हैं। यह सब कब तक चलेगा, कोई नहीं बता सकता। जम्मू-कश्मीर से धारा 370 हटाने के लिये और तीन तलाक जैसी सदियों पुरानी परिपाटी को ख़त्म करने के लिये राज्यसभा और लोकसभा में मत हासिल कर हाथों हाथ निर्णय लिया जा सकता है, तब हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्ज़ा देने में कौन सा बड़ा जोख़िम है?

मुग़लकाल में लम्बे समय तक हिन्दी विषम परिस्थितियों से जूझती रही, किन्तु सामाजिक चेतना भी जगाती रही। हिन्दी ने डटकर मुक़ाबला किया। अठारहवीं सदी में पोर्चुगीज, डच, फ्रांसिसी और उसके बाद अंग्रेज आये, तो इन सबने हिन्दी को फिर पीछे धकेलने की कोशिश की। हम ऋणी हैं स्वामी दयानंद के, जिन्होंने अकेले ही इन सब विरोधी ताकतों का सामना करने के लिये हिन्दी को आगे किया। दयानंद ही वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने स्वदेश-प्रेम के लिये, स्वाधीनता के लिये हिन्दी की ज़रूरत पर मोहर लगाई। अंग्रेजों के राज में भी अंग्रेजी का विरोध करने वाले साहसियों की कमी नहीं थी। हिन्दी के प्रचार के लिये आन्दोलनकारियों ने मशाल उठाई। 1882 में हंटर कमीशन के सामने कई बार हिन्दी के

पूरे देश के नेता, अभिनेता, पत्रकार, वैज्ञानिक, उद्योगपति, बुद्धजीवी हिन्दी बोल रहे हैं, समझ रहे हैं, लेकिन हिन्दी को वाजिब सम्मान देने की बात पर मुँह फेर लेते हैं। यह सब कब तक चलेगा, कोई नहीं बता सकता।

समर्थन में मेमोरियल भेजे गये। काशी में 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने हिन्दी के काम को आगे बढ़ाया। पंडित मदनमोहन मालवीय के भगीरथ प्रयत्नों को हिन्दी कैसे भूल सकती है। बीसवीं सदी में महात्मा गाँधी ने जब स्वदेशी आन्दोलन खड़ा किया, तब उसकी नींव में हिन्दी थी। इस देश को आज़ाद कराने में सुभाषचंद्र बोस, चंद्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह, अशफ़ाक़ुल्लाह ख़ाँ, लाला लाजपतराय सहित जितने भी नाम हैं, इन्होंने हिन्दी का ही झंडा उठाया। भारतेन्दु और उसके बाद महावीरप्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, निराला ने साहित्य की कम, हिन्दी की ज़्यादा सेवा की। अब हिन्दी के लिये मर मिटने वाले कहाँ? जब हिन्दी के लिये आख़िरी लड़ाई लड़ने का वक़्त था, तब हम सोये हुए थे और अब तो हम गहरी नींद में है।

1947 में देश तो अंग्रेजों से पिंड छुड़ा कर आज़ाद हो गया, लेकिन देश को आज़ाद कराने वाली हिन्दी अब अंग्रेज़ी की गुलामी करने के लिये छोड़ दी गई है। देश को आज़ाद कराने के लिये हिन्दी की वकालत करने वाले महात्मा गाँधी, नेहरू सहित कोई भी हिन्दी के लिये कुछ नहीं कर पाये। गाँधी जी ने कहा था कि बिना राष्ट्रभाषा के राष्ट्र गूँगा है, तो फिर समझ लीजिए, हम पचहत्तर साल से गूँगे ही है, क्योंकि अभी तक हमारी कोई राष्ट्रभाषा नहीं है।

पूरे भारत की तो बात छोड़ ही दीजिए, हिन्दी प्रान्तों के सरस्वती-मन्दिरों से हिन्दी को बाहर खदेड़ने की मुहीम पूरी तरह सफल हो चुकी है। गाँव-गाँव में, शहर-शहर में जितने भी स्कूल हैं, वहाँ अंग्रेजी पूजी जा रही है। भारत स्वतंत्र हुआ, उसके पहले तक अंग्रेजी माध्यम के स्कूल होते ही नहीं थे, और अब? अंग्रेज़ों के ज़माने में भाषा और शिक्षा के पतन के लिये मैकाले को दोष देते रहे, और अब भी उसे ही दोषी ठहरा कर हम अपना बचाव कर लेते हैं। हमारे देश के प्रधानमंत्री विदेश जाते हैं, तो हिन्दी में बोल कर आते हैं, किन्तु स्कूली बच्चों को हिन्दी में बोलने की मनाही है। पूरे देश के नेता, अभिनेता, पत्रकार, वैज्ञानिक, उद्योगपति, बुद्धजीवी हिन्दी बोल रहे हैं, समझ रहे हैं, लेकिन हिन्दी को वाजिब सम्मान देने की बात पर मुँह फेर लेते हैं। यह सब कब तक चलेगा, कोई नहीं बता सकता। जम्मू-कश्मीर से धारा 370 हटाने के लिये और तीन तलाक़ जैसी सदियों पुरानी परिपाटी को ख़त्म करने के लिये राज्यसभा और लोकसभा में मत हासिल कर हाथों हाथ निर्णय लिया जा सकता है, तब हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा देने में कौन सा बड़ा जोख़िम है? हिन्दी है, तो हम हैं। वह हमारा स्वाभिमान है। हिन्दी के बिना कैसा विकास!

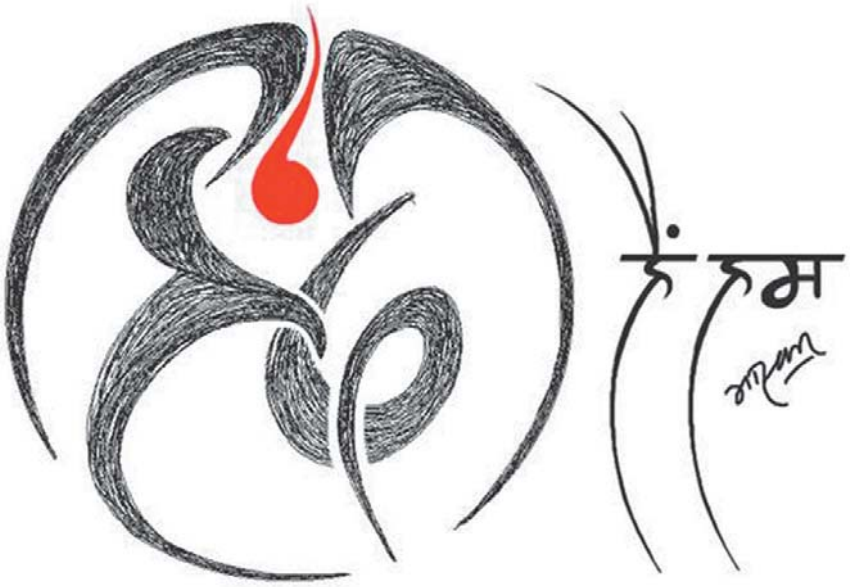

किताबों की दुनिया

रमाशंकर सिंह

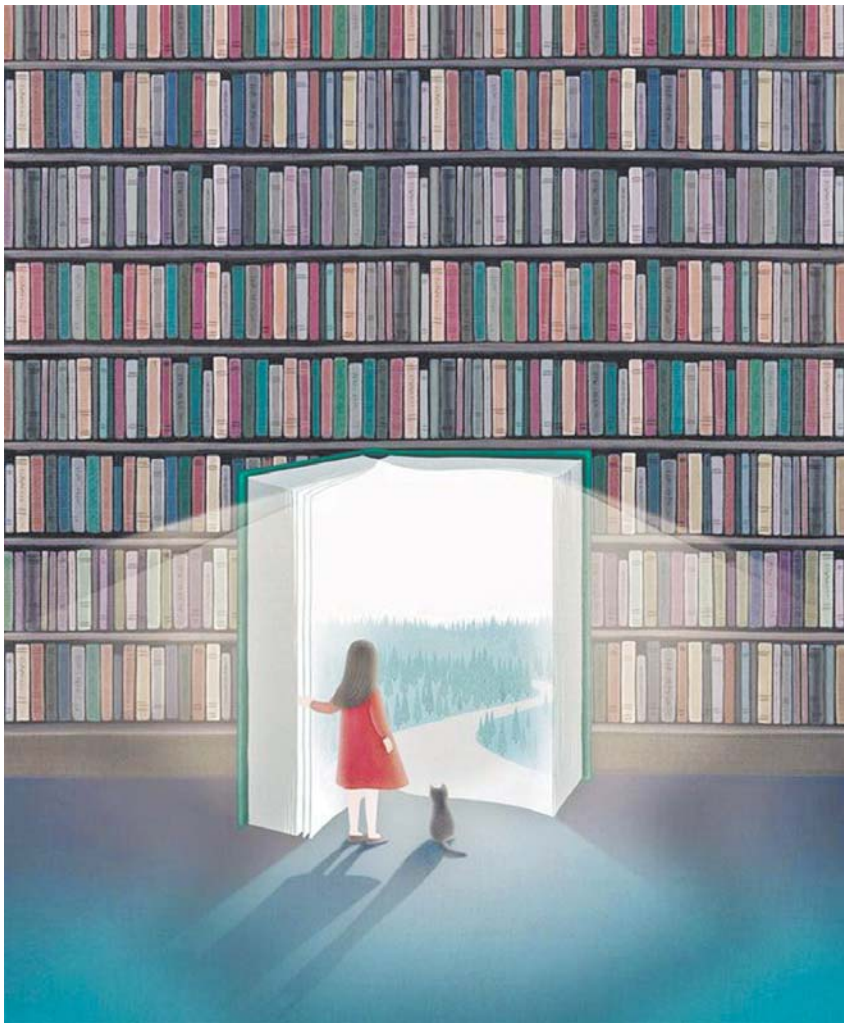

उजास

मैं हमेशा उस दुनिया की कल्पना करता हूँ जिसमें कोई ऐसा इंसान न हो जिसने किताब को न छुआ हो, केवल उनको छोड़कर जो स्कूल नहीं जाना चाहते या कोई किताब वास्तव में नहीं पढ़ना चाहते हैं। दुनिया को सुंदर बनाने के हज़ार तरीके हैं। किताब भी दुनिया को सुंदर बनाने का एक तरीक़ा है। किताब मनुष्य के लिए एक खिड़की है जिसके द्वारा वह अपने से बाहर की दुनिया में झाँकता है। वह अपने जैसे दूसरे मनुष्यों को समझने का प्रयास करता है। उन्हें जानता है और प्यार करने लगता है। आचार्यों ने ऐसे थोड़े कह दिया है कि परिचय से प्रेम उपजता है। किताब अपरिचय को तोड़ती है। व्यक्तियों की अंदरूनी दुनिया से ज़्यादा किताबें उनकी बाहरी दुनिया का आईना हैं। वे सभ्यताओं की मापक हैं। हर सभ्यता अपने महान होने का जब गुमान पालती है तो बहुत सारी भौतिक चीज़ों को गिनाने के साथ वह अपनी किताबों को भी ऊँचे पायदान पर रखती है। ...सचमुच किताबें जियावनहारा होती हैं।

किताब अपनी मूलचेतना में मंगलकारी है। उसकी उपस्थिति ही संकट, भय और मृत्यु के समय सांत्वना है। तो एक ऐसे समय में जब हम कुछ चुने हुए और कुछ थोप दिए गये संकटों से ग्रस्त हैं तो कोई किताब इनसे बच निकलने के लिए एक जुगत बन जाती है। फेसबुक पर शायद इसलिए लोगों के एक बड़े समूह ने इसे हाथों-हाथ लिया। हो सकता है कि मैं इस आंकलन में पूरी तरह से गलत होऊँ। इसका एक दूसरा कारण मुझे लगता है कि किताब मनुष्य को आत्मिक विस्तार देती है इसलिए उसे पढ़ते हुए वह थोड़ा आश्वस्त होता है। कभी-कभी किताब ख़ुद को पहचानने का ज़रिया बन जाती है। संस्कृतियों के आरम्भिक विकास बिंदु को शुरू करने में किताब एक भूमिका अदा करती हैं। संशय से उजाले की ओर, बीहड़ से किसी रास्ते की ओर किताब ले जा सकती है। किताब नितांत व्यक्तिगत दायरे से निकलकर कब सभ्यतागत दायरे में पहुँच जाती है, धर्मों का इतिहास तो यही बताता है। रामायण और महाभारत पढ़ते समय मानवजीवन के जो संकट आ खड़े होते हैं, उन्हें हल करने की चातुरी तो मनुष्य के हाथ में है लेकिन उसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ले कौन जाएगा? पहला उत्तर तो यही है कि मनुष्य के संकटों से उबरने की जुगत मनुष्य के पास है। मनुष्य तो मर जाता है, इसलिए यह भूमिका किताब ले लेती है।

●●●

मेरे सामने ढेर सारी किताबें आकर खड़ी हो गईं- चुराई हुई, गुमशुदा, मुफ़लिसी में खरीदी गयीं, उपहार में मिलीं, लाइब्रेरियों की गुमनाम शेल्फों में रखी किताबें और न जाने कहाँ-कहाँ की। सभी किताबें किसी न किसी मनुष्य ने सिरजी थीं और उनमें से अधिकांश मर चुके थे- लेखक और जिल्दसाज़ दोनों। मुझे लगा कि इन सब किताबों के लेखकों और जिल्दसाज़ों ने मुझे घेर लिया हो। बचपन के एक खेल में सब बच्चे आपस में एक दूसरे का हाथ पकड़कर गोल घेरे में खड़े हो जाते थे और जो बच्चा बीच में खड़ा होता था, उसे इस घेरे को तोड़कर भागना होता था। ऐसे में गोल घेरे के बीच में खड़ा बच्चा सबसे कमज़ोर जगह खोजता था जहाँ वह धक्का देकर भाग सके। किताबों के साथ ऐसा नहीं हो पाता। एक बार आप उनके गोल घेरे के अंदर गए तो निकलना मुश्किल हो जाता है। जहाँ पर आप खड़े हैं, वहीं पर वे आपको रचने लगती हैं। यह तो एक पाठक की गति हुई, लेखक तो किताब लिखते समय क्या से क्या हुए हैं, यह तो कोई लेखक ही बता सकता है।

किताब ज़िंदगी बदल सकती है, व्यक्ति और समुदाय दोनों की। आप मोहनदास करमचंद गाँधी, भगत सिंह, डॉक्टर भीमराव अंबेडकर से लेकर सफदर हाशमी के जीवन का अध्ययन कीजिए। किसी न किसी किताब ने उनके जीवन को विस्तृत किया। इन लोगों का जीवन किताब के परस से बदल गया था।

किताब ज़िंदगी बदल सकती है, व्यक्ति और समुदाय दोनों की। यह आप मोहनदास करमचंद गाँधी, भगत सिंह, डॉक्टर भीमराव अंबेडकर से लेकर सफ़दर हाशमी के जीवन का अध्ययन कीजिए। यह सभी लोग सच्चे, संवेदनशील और निडर थे। किसी न किसी किताब ने उनके जीवन को विस्तृत किया। वर्षों पहले मैंने एक पतली सी किताब पढ़ी थी जिसकी लेखिका का नाम किताब पर नहीं छपा था। किताब का नाम 'सीमंतनी उपदेश' था। इस जैसी न जाने कितनी किताबें हैं जिनके लेखकों-लेखिकाओं का अता-पता नहीं, लेकिन इन लोगों का जीवन किताब के परस से बदल गया था। किताब उनके लिए पारस पत्थर थी। वैसे हर कमजोर, महिला, दलित और बहिष्कृत व्यक्ति या समुदाय के जीवन में किताब पारस पत्थर की भूमिका निभाती है।

किताब का यह परस हमारे आसपास की दुनिया को सुंदर और समान बनाने की कोशिश करता है लेकिन जाति, धन, पद-प्रभाव में विभाजित समाज इसमें रोड़े अटकाता है। थोड़े देर के लिए आँखें बंद कीजिए, अपने आसपास के उन हाथों को याद करने की कोशिश कीजिए जिन्होंने जीवन में किसी किताब को नहीं छुआ। क्या उनका जीवन इतना हेय था कि वे किसी किताब को छू न सकें? मैं हमेशा उस दुनिया की कल्पना करता हूँ जिसमें कोई ऐसा इंसान न हो जिसने किताब को न छुआ हो, केवल उनको छोड़कर जो स्कूल नहीं जाना चाहते या कोई किताब वास्तव में नहीं पढ़ना चाहते हैं। दुनिया को सुंदर बनाने के हजार तरीक़े हैं। किताब भी दुनिया को सुंदर बनाने का एक तरीक़ा है।

●●●

किताब से ही मानवीय दुनिया सुंदर नहीं हो जाती है, उसके लिए मनुष्य-भाव ज़रूरी है। भक्तिकाल के कवि इसके उदाहरण हैं जिन्होंने किताब के आगे मनुष्य और उसके सच को प्राथमिकता दी। किताब सोने में सुगंध पैदा कर सकती है लेकिन ज़रूरी शर्त यह है कि सोना

उपलब्ध तो हो। मनुष्य पहले मनुष्य तो हो। अन्यथा बहुत पढ़े-लिखे लोग हीनतर अपराधों में लिप्त पाए जाते हैं। फिर भी, बहुत सारे लोगों की तरह मेरा भी किताबों पर भरोसा क़ायम है। किताब मनुष्य के लिए एक खिड़की है जिसके द्वारा वह अपने से बाहर की दुनिया में झाँकता है। वह अपने जैसे दूसरे मनुष्यों को समझने का प्रयास करता है। उन्हें जानता है और प्यार करने लगता है। आचार्यों ने ऐसे थोड़े कह दिया है कि परिचय से प्रेम उपजता है। किताब अपरिचय को तोड़ती है। चिकित्सक अतुल गावंडे ने अपनी किताब 'बीइंग मॉर्टल' में ध्यान दिलाया है कि हम कई चीज़ों से कतराकर निकल जाना चाहते हैं। हम तब तक टाल देना चाहते हैं जब तक चीजें बिल्कुल हमारे सामने आकर खड़ी न जाएँ। मसलन, बीमारियों का, वृद्धावस्था का और मृत्यु का सवाल। बीमारी से तो नहीं लेकिन वृद्धावस्था और मृत्यु से टकराने में किताब मदद करती है। पश्चिमी देशों में चिकित्सकीय मानव विज्ञान (मेडिकल एन्थ्रोपोलॉजी) ज्ञान की प्रमुख शाखा है। असाध्य एवं गंभीर रोगों से लड़ने के लिए किताबें पढ़ने की सलाह चिकित्सक देते रहते हैं। भारत में सबके पास कैंसर जैसे रोगों से लड़ने की वित्तीय क्षमता नहीं है इसलिए वे दवा-दारू जुटाने की लड़ाई में ही मर-खप जाते हैं लेकिन जिनके पास चार पैसा है उनके सामने कैंसर से आगे सोचने की बात आती है। ऐसे में जीवन में विश्वास जगाने वाली किताबें मौत के आग़ोश में जा रहे व्यक्ति की मदद करती हैं।

भारत में भी किसी किताब की दुकान पर, विशेषकर अंग्रेजी किताबों की दुकान पर चले जाइए तो कैंसर जैसे रोगों से लड़ने वाले 'सर्वाइवर्स' की किताबें दिख जाएँगी। यह किताबें शायद पाठक की आर्थिक हैसियत की ओर इशारा भी करती हैं। एक तरफ कैंसर के इलाज के अभाव में दम तोड़ता भारत है तो दूसरी तरफ़ वह भारत भी है जो इस रोग से कुछ दिन तक लड़ सकता है। अपनी आर्थिक हैसियत के अनुसार। जो दवाओं का दाम झेल ले जाते हैं लेकिन अकेलापन और अपने अंदर मृत्यु की उपस्थिति को नहीं झेल पाते हैं, किताब उनकी मित्र बन जाती है। वे किताब ख़रीदकर पढ़ सकते हैं, ख़ुद किताब लिख सकते हैं। अभी कुछ दिन पहले मैंने कानपुर में किताबों की एक दुकान पर लिसा रे की किताब 'क्लोज टू बोन' उलट-पलटकर देखी, छुआ। लिसा रे को कैंसर से जूझने के लिए क्या करना पड़ा, वे इसके साथ कैसे रहीं यह सब उन्होंने बताया है, अपनी ज़िंदगी के ख़ूबसूरत पलों, अभिनय की यात्रा को उन्होंने इस किताब में खोलकर रख दिया है। इस किताब को

उलटते-पलटते हुए मुझे ख़्याल आया कि एक सामान्य पुस्तक प्रेमी और किसी प्रकार के कैंसर से पीड़ित व्यक्ति इसे अलग-अलग ढंग से पढ़ेगा और उसकी 'इयत्ता' इस किताब से उसे जोड़ देगी। मुझे अपने एक दोस्त का चेहरा याद आता है जिसे कैंसर हो गया था, अब वह कैंसर पर विजय प्राप्त करने की कोशिश कर रहा है, अर्थशास्त्र का प्रोफ़ेसर है और अपनी पीएचडी को किताब के रूप में लाना चाह रहा है।

व्यक्तियों की अंदरूनी दुनिया से ज़्यादा किताबें उनकी बाहरी दुनिया का आईना हैं। वे सभ्यताओं की मापक हैं। हर सभ्यता अपने महान होने का जब गुमान पालती है तो बहुत सारी भौतिक चीज़ों को गिनाने के साथ वह अपनी किताबों को भी ऊँचे पायदान पर रखती है। ग्रीस, बेबिलोनिया, मेसोपोटामिया, ईरान, भारत और चीन जब 'अपनी बात' बताने लगते हैं तो वे किताबों की बात करते हैं। चीन के बारे में जोसेफ नीधम और भारत के बारे में जवाहरलाल नेहरू की किताबें पढ़िए तो वे ऐसी दर्जनों किताबों के बारे में बताते हैं जिन पर चीन और भारत को गर्व है। यह दोनों विद्वान किताब लिखने वालों, बनाने वालों और पुस्तकालयों के बारे में भी बताते हैं।

किताबें क्यों पढ़नी चाहिए? इस सवाल का कोई सीधा जवाब भला कैसे दिया जाय। बीसवीं शताब्दी में कई बड़े युद्ध लड़े गए और उनके बीच

किताबें लिखी गयीं, पढ़ी गयीं। इतिहासकार मार्क ब्लाख ने युद्ध की खाई में रहते हुए किताब लिखी थी। उन्हें खाई से बाहर ले जाकर एक दिन गोली मार दी गई। उनकी किताब 'हिस्टोरियंस क्राफ्ट' एक बच्चे के सवाल से शुरू होती है : पापा सच-सच बतलाना इतिहास का क्या उपयोग है? पूरी किताब जैसे उस बच्चे के सवाल का जवाब है। यही सवाल अगर कोई बच्चा थोड़ा सा घुमाकर आपसे पूछ ले कि किताब का क्या उपयोग है? तो पसीने छूट जाएँगे। किताब हमारे जीवन में क्या करती है? किताबों में लिखा साहित्य हमारे जीवन में क्या भूमिका अदा करता है? इन सवालों का जवाब बड़ा मुश्किल है और तुरंत दिया भी नहीं जा सकता है।

एक बार मैं सीएसडीएस के अभय दुबे से मिलने उनके दफ़्तर गया था। वे कुछ लिख रहे थे। मैंने उनसे पूछा कि आप लिखते क्यों हैं? उन्होंने कहा- लिखा हुआ ही बचेगा। जब कोई मर जाता है तो कुछ समय बाद लोग उसका चेहरा भूल जाते हैं, केवल उसकी कुछ धुँधली भंगिमाएँ याद रहती हैं। हमारे बहुत ही आसपास के लोग भी अपने कामों में मसरूफ़ हो जाते हैं। मैंने इधर हाल ही में ऐनी फ्रैंक की 'एक युवा लड़की की डायरी' फिर से पढ़ी। यह मौत के मुँह में जा रही एक किशोरी के रोजमर्रा के स्वप्नों, दिक्कतों, प्रेम और जीवन में विश्वास की डायरी है। आप देखिए कि द्वितीय विश्वयुद्ध का समय है, यूरोप के नगरों पर चारों तरफ़ से बम गिर रहे हैं और वह किशोरी कहीं किसी पुस्तकालय से एक किताब लेकर आई है। वह उसे पढ़ रही है और उस पर टिप्पणी भी लिख रही है। उसे मानवीय जीवन पर अगाध आस्था है। इस इस युद्धक और अनिश्चित वातावरण में ऐसा क्या है जो उसे किताब पढ़ने की प्रेरणा दे रहा है? इसका उत्तर खोजते समय मुझे वागीश शुक्ल का निबंध संग्रह 'शहंशाह के कपड़े कहाँ हैं? याद आता है। इसमें एक जगह वे कहते हैं कि साहित्य मृत्यु का सामना करने की विधि है। ऐनी फ्रैंक को क्या पता है कि उसका अंत निकट है, तब भी उसे जीवन में विश्वास को नहीं खोना है। यहाँ मैं यह बिलकुल नहीं कहूँगा कि ऐनी को किताब से जीवन की उर्जा मिलती है। उसे किताब वह उर्जा बनाये रखने में मदद देती है। किताब उस उसमें विश्वास की नदी को सूखने नहीं देती। किताबें जियावनहारा होती हैं।

-'समालोचन' में प्रकाशित आलेख 'किताब की यात्रा' से साभार

ये जो ज़िंदगी है...
किताब है

ममता व्यास

हम ज़िंदगी भर अनगिनत किताबें पढ़ते हैं और इन किताबों में मन के प्रश्नों के उत्तर खोजते हैं। न जाने कितनी किताबें पढ़ी और कितनी पढ़ के भूल गए, लेकिन कुछ किताबें हमें ताउम्र याद रहती हैं। किताबें हमें जीना सिखाती हैं और जीने का हुनर भी। हम सभी अपनी ज़िंदगी जीते हैं। कोई अपने लिए जीता है तो कोई किसी और के लिए गुज़ार देता है। ये जीवन भी तो एक किताब ही है जिसे हम जन्म के दिन से लिख रहे हैं और अंतिम दिन तक लिखेंगे। क्या-क्या लिखा? कैसा लिखा? अधूरा लिखा या पूरा लिखा? ख़ुशी लिखी या ग़म लिखा? कभी सोचा ही नहीं, बस लिखते ही गए कभी इस किताब को पढ़ने की नहीं सोची और जिस दिन पढ़ने बैठे उस दिन किताब ही रूठ गयी, बोली अब नहीं, बहुत देर हुई। अब सो जाओ तुम।

क्यों समय रहते हमने अपनी ज़िंदगी की किताब नहीं पढ़ी। अंतिम नींद के पहले सारी किताबें पढ़ लेनी थी। रोज़ हम नए-नए पन्नों पर हर पल का हिसाब लिखते चले गये। खाते-बही लिख-लिख कर ख़ुश होते गए लेकिन खातों को, इन पोथियों को कभी गलती से भी उलट-पलट कर नहीं देखा, किसी दिन फुरसत से अगर देखने बैठे तो पायेंगे कि हमारी ज़िंदगी की किताब का पहला पन्ना हमारे जन्म से शुरू होता है और फिर हम गढ़ने लगते हैं रोज नई इबारत-बचपन की, वो काग़ज़ की कश्ती, बारिश का पानी और गुड़ियाँ के ब्याह के रंग में रंगे कुछ पन्ने तो आम के पेड़ से कच्ची कैरियों को चुराने के आनन्द से सराबोर कुछ पृष्ठ। कुछ आगे बढ़े तो युवावस्था के इन्द्रधनुषी पन्ने जिनमें है प्रेम के सुर्ख गुलाब, तो कहीं है पीले, नारंगी अहसास।

किसी दिन फ़ुर्सत से अगर देखने बैठें, तो पायेंगे कि हमारी ज़िंदगी की किताब का पहला पन्ना हमारे जन्म से शुरू होता है। फिर हम गढ़ने लगते हैं रोज़ नई इबारत बचपन की... वो काग़ज़ की कश्ती, बारिश का पानी और गुड़िया के ब्याह के रंग में रंगे कुछ पन्ने। आम के पेड़ से कच्ची कैरियों को चुराने के आनन्द से सराबोर कुछ पन्ने भी। आगे बढ़ें, तो यौवन के इन्द्रधनुषी सफ़हे, जिनमें है प्रेम के सुर्ख गुलाब, तो कहीं है पीले, नारंगी अहसास।

कहीं फागुन के रंग तो कहीं सावन की भिगोती फुहार से भीगे-भीगे पन्ने होते हैं इस किताब में। कुछ पन्ने गुलाबी और थोड़े सुर्ख़ होते हैं जिन पर लिखी होती है प्रेम की, इज़हार की और मिलन की इबारत। ये पन्ने इस किताब के सबसे चमकीले पन्ने होते हैं, जो पूरी ज़िंदगी हमें रोमांचित करते है हम इन्हें बार-बार पढ़ना चाहते हैं-प्रेम के पन्ने कभी बदरंग नहीं होते।

वो उम्र के हर मोड़ पर हमें लुभाते हैं। इन पन्नों पे हमने अपनी सबसे सुन्दर भावनाएँ दर्ज की होती हैं, लेकिन इस किताब के कुछ पन्ने स्याह क्यों? काले नीले और थोड़े बदरंग क्यों? राग जैसे धूसर से। ज़रूर ये दर्द दुख और पीड़ा के पन्ने हैं तन्हाइयों के पन्ने हैं इन्तजार के पन्ने है जो आँसुओं से भीग-भीग कर गल गए हैं इन्हें ज़रा आराम से उलटना वरना ये चूर-चूर हो जायेंगे। ये दर्द के पन्ने हम दुबारा कभी भी पढ़ना नहीं चाहते इन्हें पढ़ने से हमारा अंतर-मन दुखता है। हम फिर से दुख के सागर में डूब जाते हैं।

ये काले धूसर पन्ने हमें बिलकुल नहीं सुहाते। आगे फिर इस किताब में कुछ सतरंगी पन्ने जगमगाते हैं। इनमें दर्ज है किसी की मुस्कुराहटें जो हमने सजाई थी किसी के लबों पर या किसी ने रख दी थी हमारे होठों पर, ये हँसी-ख़ुशी के सतरंगी पन्ने भी चमक रहे है यहाँ। अरे, ये कुछ पन्ने हमने किताब में मोड़ कर क्यों रखे? ये हमारे बिलकुल निजी पन्ने हैं शायद जिन में हमने अपने निजी पलों को छुपा रखा है। ज़िंदगी की किताब के ये

पन्ने हमें जीने का हौसला देते हैं। तन्हाइयों में जब कोई पास नहीं होता तब ये प्यार की थपकी देते हैं, जब आँखों से आँसुओं की धारा बहती है और कोई नहीं साथ होता तब ये पन्ने कहते हैं हम है ना। तुम्हारे ये मुड़े पन्ने जिनमें छिपे है कई निच्छल रिश्ते, आत्मिक रिश्ते बिना ज़रूरत के रिश्ते और उनकी ऊष्मा अभी है जीवित है। इन्हें छूना नहीं हाथ जल सकते हैं, आगे चलते हैं अरे इन आखिरी पन्नों पर तो कुछ लिखा ही नहीं है बिलकुल कोरे-क्यों? शायद ये वो पन्ने हैं उन भावनाओं और संवेदनाओं के नाम हैं उन ख्वाहिशों के नाम हैं। जिन्हें कभी व्यक्त ही नहीं किया गया, अनकही बातें लिखी हैं यहाँ।

भला शब्दों में इतनी सामर्थ्य कहाँ की वो भावनाओं को हुबहू व्यक्त कर दें। सारा अनकहा इन्हीं पन्नों में लिखा गया है। टूटी-फूटी ख़्वाहिशें, आधे-अधूरे अरमान कुछ बेनाम रिश्ते, कुछ प्रेम भरे ख़त जो कभी लिखे ही नहीं गए कुछ आँसू जो पलकों पे सूख गए कुछ अनकही बातें जो होठों के किनारों पे चिपकी रहीं, इन पन्नों को पढ़ने की नहीं महसूस करने की ज़रूरत है। इन्हें भी आप छुए नहीं बहुत कोमल हैं ये-मुरझाने का डर है और अंत में इस किताब के कुछ पन्ने फटे हुए से दिखते हैं ज़रूर ये वो पन्ने होंगे जो ज़िंदगी की किताब से हमेशा के लिए दूर हो गए मगर उनके अलग होने के निशाँ किताब पर बख़ूबी देखे जा सकते हैं। ठीक वैसे जैसे कोई मासूम सा बच्चा अपनी गलतियाँ छिपाने के लिए और कॉपी को सुन्दर बनाये रखने के लिए कुछ पन्ने फाड़ देता है। टीचर के दिए गए रिमार्क वाले पन्ने को भी फाड़ देता है और मन-ही-मन ख़ुश होता है कि अब कोई कमी नहीं इस नोटबुक में सब ठीक कर दिया है, लेकिन फटे हुए पन्नों की चुगली बाकी पन्ने कर ही देते हैं।

तो साहब, ये है ज़िंदगी की किताब के पन्ने, हरेक की अपनी किताब है ये। हमें तय करना है हम उसे किस तरह से संजोते हैं पढ़ते हैं। हमें कोई हमारे जाने के बाद भी प्रेम से पढ़े, हम ऐसी किताब बन जाये। किसी शायर ने क्या ख़ूब कहा है- ''ये किताब भी क्या खिताब है/कहीं इक हँसी सा ख़्वाब है/कहीं जान लेवा अजाब है/कहीं आँसू की है दास्ताँ/कहीं मुस्कुराहटों का है बयान/कई चेहरे हैं इसमें छिपे हुए/इक अजीब सा ये नकाब है/कहीं खो दिया, कहीं पा लिया/कहीं रो दिया, कहीं गा लिया/कहीं छीन लेती है हर खुशी/कहीं मेहरबान लाजवाब है।''

-'गद्य कोश' से साभार

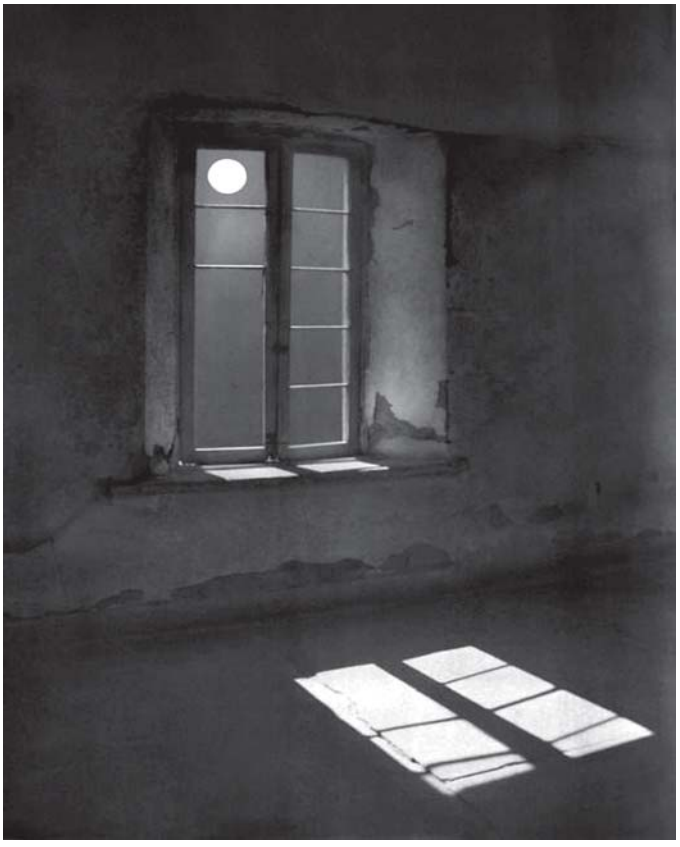

बाँसुरी का बाँवरा

राजेश गनोदवाले

'रंग संवाद' का आग्रह नहीं होता तो कैसे जान पाता कि छत्तीसगढ़ के रायपुर शहर में एक परिवार की तीन पीढ़ियों ने बाँसुरी वादन के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया दिया है। चौंकना इस मायनों में भी अधिक था कि सन्दर्भ जिस परिवार का है उन्हें जानता रहा हूँ। बरसों से। जानना, यानी उनकी सांगीतिक शक्ति को जानना। सरलीकृत करते हुए कहा जाए तो उन्हें मंचों में परफॉर्म करते देखना। कितनी छवियाँ हैं मन में। साथ में बातचीत करने की, उन्हें मंचों में बजाते देखने की और उनके प्रतिदिन के ठिकाने एक वाद्य विक्रेता की दुकान में अपने कलाकार मित्रों के साथ गपशप करते दिख जाने की। एक छवि उनकी अस्पताल में उपचार की ख़ातिर भर्ती की भी यादों में दर्ज़ है! प्रायः सफ़ेद कुर्ता-पाजामा पहने मुस्कुराते हुए मिल जाने वाले मृदुभाषी कलाकार व्यक्ति को उस समय ठीक से जान न पाने का अफ़सोस अब अधिक होता है। उनके और मेरे बीच फ़ासला तो था ही। उम्र का और बेशक समझ का भी।

बाँसुरी वादक सन्तोष टांक... इस नाम के साथ रायपुर का सांगीतिक समाज बेहद सुपरिचित है। बाँसुरी की बात हो तो उनकी याद अनिवार्य उपस्थिति बन जाती थी। अब वे नहीं हैं। एक दशक से कुछ अधिक समय बीत गया उन्हें विदा हुए। जब उनकी यादों को खँगालने की बारी आई तो छोटे शहर में किसी वाद्य का होना संगीत समाज के लिए कितना मायने रखता है? यह बात समझ आने लगी। और तब इस कलाकार के योगदान की ऊँचाई भी सामने आती गई। आज का रायपुर उस रायपुर से बेशक अलग ही था जब बाँसुरी के लिए कोई व्यक्ति एकल ढंग से संघर्षरत था।

छत्तीसगढ़ में शास्त्रीय संगीत रहा है। एक शताब्दी से अधिक का समय बीत गया है जब से संगीत के उदाहरण इस प्रदेश में दिखाई देते रहे हैं। लेकिन सतह पर वादन और नृत्य के साथ गायन का प्रभुत्व ही प्रायः छाया रहा है। बाँसुरी क्यों नहीं थी? इस बारे में पीछे जाने पर सम्भवतः कोई सूत्र दिखाई दें। वैसे पिछली आधी शताब्दी का ज्ञात सांगीतिक इतिहास देखें तो छत्तीसगढ़ में बाँसुरी वादकों की सँख्या उँगलियों में गिनी जा सकती है इतनी ही है। अर्थात काफ़ी बाद में वे लोग आए जिन्होंने इस दिशा में कुछ किया। इसमें, बेशक यहाँ के दोनों संगीत महाविद्यालयों की भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता। आज अगर थोड़े से यदि बाँसुरी में रमे हैं तो उसमें कहीं न कहीं तब बजा रहे उन चंद नामों का ही योगदान है जिनके अधरों में सजी हुई बाँसुरी अवसरों और प्रसंगों पर दिख जाया करती थीं।

स्व. सन्तोष टांक उस काल का एक महत्वपूर्ण नाम है जिनका योगदान अप्रतिम है। कभी यह जानने का कोई मौक़ा नहीं आया था कि इस परिवार में संगीत आया कैसे? इससे परिचित हुआ जा

सच्चे उत्तराधिकार के साथ परवान चढ़ती वेणु विरासत...

सके। जबकि *टांक गुरुजी को बजाते देखने का अनुभव लम्बा रहा। वे लोक मंचों के अलावा सुगम मंचों में भी नियमित रूप से सक्रिय थे। एक समय आकाशवाणी रायपुर अपनी सुगम संगीत की गतिविधियों के कारण देश के चुने हुए आकाशवाणी केंद्रों में जगह बनाता था। उनकी आंतरिक और बाह्य रेकॉर्डिंग यानी संगीत के कॉन्सर्ट्स में बाँसुरी के लिए एक ही स्थाई और अनिवार्य नाम था- और वो बेशक टांक गुरुजी थे। सन् 75 से 2000 तक का समय उनका दौर था। बाँसुरी की जगह आने पर वही याद किये जाते थे। टांक परिवार कहें तो एक बारगी बात साफ़ नहीं होती। लेकिन संतोष टांक कहें तो अचानक बाँसुरी का चित्र आँखों के सम्मुख उभर जाता है। अब जबकि वे नहीं हैं तो उनकी यह ''वेणु विरासत'' विपरीत हालातों के बावजूद परिवार ने बचाए रखी है। टांक गुरुजी की चार संतानों में विवेक बड़े हैं। तीन बहनें हैं, सभी को गाने का शौक़। पता लगने पर कि उनकी तीसरी पीढ़ी भी बाँसुरी बजा रही है तब आनन्द और सन्तोष दोनों का भाव मन में उतर जाता है। पुत्र और नाती में भी वही कलात्मकता समाई है। विवेक तो खासे सक्रिय हैं। उनका पुत्र नमन टांक भी इंजीनियरिंग पढ़ाई के साथ पिता से सीख रहा है। विवेक की दो संतानों में बड़े पुत्र नमन की फूँक की गोलाई इस बात को समझाती है कि दादा और पिता के असर में वह भी शामिल हो गया है!

बातचीत में विवेक से ही पता लगा कि उनके पिता का जीवन काफ़ी संघर्षमय बीता। गुजराती मूल उनका था। लेकिन जन्म स्थली थी- *छुईखदान। घर की ज़िम्मेदारी भी उन्हें देखनी होती थीं। दिन में वे गुज़र-बसर के लिये छोटे-छोटे दैनिक व्यवसाय करते थे और पढ़ाई के लिए रात में समय निकालना सीख गए थे। स्कूल के बाद आगे की पढ़ाई बैंगलोर से पूरी की। अध्ययन के प्रति जन्मजात रुचि के कारण इस शहर में आज से पाँच दशक पहले उन्होंने बीएससी करने का निर्णय लिया। संगीत के प्रति पहला रुझान इसी दक्षिण भारतीय नगर में जागा। असल में जिस हॉस्टल में वे रहते थे वहीं का गोरखा शौकिया बाँसुरी बजाता था। इस वाद्य से पहले-पहल परिचय उनका वहीं हुआ। जब-जब बाँसुरी की आवाज़ कानों तक पहुँचती उन्हें रस आने लगता। एक प्रकार से बाँसुरी के उसी सम्मोहन ने ही उनके भीतर सांगीतिक बीज डाल दिये। पढ़ाई पूरी कर वे वापस लौटे तो सहज ही खड़ी बाँसुरी बजानी कर दी। बजाते हुए परिचित सुनते तो प्रोत्साहित करते। बाँसुरी के प्रति दीवानगी का दौर क्रमशः बढ़ने लगा। कुछ समय बाद वे स्थानीय संगीत समिति से जुड़ गए और इसी क्रम में लोकरंगमंच से। उधर, लोक मंच के प्रति उनकी आसक्ति का भी अपना ही आनन्द था। राजनांदगांव की संस्था *चंदैनीगोंदा ने ही सही मायनों में उनके भीतर के कलाकार को जागृति दे दी। एक तरफ वे लोकमंच पर बजा रहे थे तो आकाशवाणी के आयोजनों में भी।

एक रोचक बात टांक गुरुजी के सम्बन्ध में पता लगी विधिवत सीखने की बजाय गुणीजनों के साथ बैठकर जो मिला उसे ग्रहण करते चले गए। इनमें सर्वप्रथम उनके फूफा का योगदान रहा जिनका कहीं से नाता उस्ताद फैयाज खां घराने तक जाता था। उन्होंने उन्हें प्रोत्साहित किया। ठुमरी गायिका- डॉ. अनीता सेन का मार्गदर्शन भी उन्हें मिलता गया। लगन का ही असर था, कि आकाशवाणी के भी वे नियमित कलाकार थे। रायपुर की एक नाट्य संस्था अवंतिका के लिए मिर्ज़ा मसूद के निर्देशन में तैयार भीष्म साहनी के नाटक कबीरा खड़ा बाज़ार में कुछ पदों को संगीत बद्ध भी उन्होंने ही किया था। मूलरूप से वे रायपुर की एक गुजराती शाला में बायोलॉजी

और हिंदी पढ़ाया करते थे। अपने जीवन में आध्यात्मिक रुचियों के कारण धार्मिक गुरुओं के साथ भी उन्होंने विदेश दौरे बतौर संगतकार किये।

इधर, विवेक भी पिता की तरह दोनों मोर्चों में सक्रिय है। लोक मंचों सहित छत्तीसगढ़ी सिने-संगीत में भी बराबर व्यस्त रहते हैं। उन्हें बाँसुरी की बुनियादी समझ पिता से मिली। उन्होंने ही पुत्र को इसकी सूक्ष्मता से अवगत कराया। लेकिन डिग्री के लिए विवेक ने संगीत के प्रशिक्षण संस्थानों का सहारा लिया। संगीत की विधिवत डिग्री के अलावा अँग्रेज़ी साहित्य में पोस्ट ग्रेज्युएट होना उनकी अतिरिक्त ख़ूबी ही कही जानी चहिये। अध्ययनशील पिता के कारण विवेक में भी आध्यात्मिक समझ अंतर्निहित है। बाँसुरी को इस नज़रिए से देखते हुए भी वे रियाज़ आदि करते हैं। सक्रियता की बात की जाए तो एकल और सँगत दोनों मोर्चे पर समान रुझान है। सन् 1994-95 को सम्पन्न प्रथम राष्ट्रीय युवा महोत्सव में भागीदारी के बाद राष्ट्रीय युवा उत्सव के दरवाज़े खुलते चले गए। 2 प्रसंग ऐसे भी आए जब प्रथम स्थान पाया। गृह राज्य के अलावा मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, बंगाल आदि राज्यों के अनेक शहरों में बजाने का अनुभव है। संगतकार की हैसियत से भी पण्डित बिरजू महाराज, शाश्वती सेन, डॉ.आरती सिंह, यासमीन सिंह (कथक) अनूप जलोटा, हुसैन बन्धु (सुगम संगीत) आदि स्टार कलाकारों के साथ बजाने का मौक़ा भी ख़ुद की मेहनत से प्राप्त किया।

अपने अनुभव को व्यापक बनाने की इन्हीं घड़ियों में विवेक को मोरारी बापू के साथ भी सत्संग का मौक़ा मिला। अनेक आध्यात्मिक गुरुओं के लिए कुछ वर्षों तक बाँसुरी बजाई। इस अनुभव को वे अपने जीवन का ज्ञानवान समय मानते हैं। हालाँकि वहाँ एकरस दिनचर्या को देख बाद में ख़ुद को अलग कर लिया। इसके पीछे विवेक स्वयं के रचनात्मक कौशल के साथ सम्पूर्ण रूप से न्याय न हो पाना मानते हैं। पिता की तरह विवेक को भी जीवन यापन के लिए नौकरी रास आई। रेलवे विभाग से सम्बद्ध है।

विवेक अपनी पीढ़ी में इस समय सबसे लोकप्रिय बाँसुरी वादक हैं। उनकी शैली अत्याधुनिक है। वे उन कलाकारों में से नहीं है जो अवसरों की तलाश में ख़ाली बैठे रहना भाग्य मान लिया करते हैं! कोरोना काल में जहाँ अन्य कलाकार ख़ाली थे वहीं विवेक सर्वाधिक व्यस्त! घर में ही स्वयं की आवश्यकता के

अपने अनुभव को व्यापक बनाने की इन्हीं घड़ियों में विवेक को मोरारी बापू के साथ भी सत्संग का मौका मिला। अनेक आध्यात्मिक गुरुओं के लिए कुछ वर्षों तक बाँसुरी बजाई। इस अनुभव को वे अपने जीवन का ज्ञानवान समय मानते हैं।

अनुसार डाले गए एक छोटे से स्टूडियो सेटअप ने उन्हें भरपूर मदद की। आज जिन्हें भी, बाँसुरी के पीसेस की दरकार हो, विवेक उनकी आवश्यकतानुरूप उसे बजाकर भेज देते हैं। उनका एक और गुण वाद्य की निर्मिती है। मन माफिक बाँसुरी न मिलना कभी उनके शहर में बड़ी समस्या थी और महानगरों तक पहुँच भी मुश्किल। इसका तोड़ ख़ुद ही बाँसुरी बना कर निकालने का सोचा। आसाम से बाँस मंगा कर बाँसुरी बनाने लगे गए। पण्डित रोनू मजुमदार जैसे प्रतिष्ठित कलाकारों की हौसला अफ़ज़ाई ने उन्हें बाँसुरी निर्माण के प्रति आशस्वस्ति का भाव ला दिया। अब वे निर्माण के प्रति भी गम्भीर हैं। लेफ्ट या राइट की पकड़ वालों की बात हो या हाथ के अलग-अलग रखाव से उपजने वाले निकास के प्रश्न। विवेक चूँकि ख़ुद वादक हैं इसलिए स्वरों के सवालों को पहचानते हैं। इसके ही मुताबिक बाँसुरी में छिद्र-प्रयोग को स्वयं तो आत्मसात करते ही हैं, अपने विद्यार्थियों को भी बनाने के महत्व से परिचित कराते हैं। नवोदितों के लिए प्रारम्भिक दौर में ही महँगी बाँसुरी लेना सम्भव नहीं होता इसीलिए भी उन्होंने बनाने की राह पकड़ी। उनके पास सीखने वाले भी आते हैं जिनसे वे कोई शुल्क नहीं लेते। इसके पीछे उनका अपनी सोच है। बाँसुरी के कलाकारों को सुनवाने की इच्छा शक्ति से एक बार वेणु महोत्सव की परिकल्पना भी साकार की जिसमें दो रोज़ तक देश के कुछ चुने हुए बाँसुरी वादकों को राजधानी में सुना गया। 2022 में एक बार फिर ऐसा ही कुछ करवाने की चाह मन में पनप रही है। वे मंच पर अपने पिता के साथ कभी बजा पाए हों या नहीं, उनका बेटा उनके साथ बजा रहा है। सबसे अच्छी बात, तीन पीढ़ियों की इस विरासत का विस्तार अगर उनके माध्यम से घर के बाहर भी होता है तो टांक गुरुजी के इस योग्य पुत्र के प्रगतिशील सोच में यही सबसे बड़ा सन्तोष भाव है।

सन्दर्भ : * टांक गुरुजी : स्कूल में होने के कारण उनके क़रीबी मित्र इसी सम्बोधन से जानते थे। * चंदैनी गोंदा : छतीसगढ़ में लोक रंगमंच की सबसे सशक्त पार्टी थी कभी यह। दाऊँ राममचंद्र देशमुख इसके जनक थे। * छुईखदान : ब्रिटिश काल में यह एक देसी रियासत थी। वर्तमान में यह शहर छतीसगढ़ के राजनांदगांव में आता है।

सरोद का शिखर

ज़ाहिद ख़ान

भारतीय शास्त्रीय संगीत में उस्ताद अली अक़बर ख़ाँ की शिनाख़्त अद्वितीय सरोद वादक की है। मैहर घराने के इस शानदार संगीतज्ञ के वालिद उस्ताद अलाउद्दीन ख़ाँ भी प्रसिद्ध सरोद वादक थे। भारतीय शास्त्रीय संगीत परंपरा के वे पितामह कहे जाते हैं। तार से बजने वाले साज़ों पर महारत रखने वाले उस्ताद अली अक़बर ने शास्त्रीय संगीत के लिए अद्भुत और अमर रचनाओं का सृजन किया। भारतीय संगीत परंपरा को नए मुक़ाम तक पहुँचाया। प्रसिद्ध वायलिन वादक येहुदी मेनुहिन ने उनकी तारीफ़ करते हुए, उन्हें दुनिया का महान संगीतकार बतलाया था। उस्ताद अलाउद्दीन ख़ाँ की उनके बारे में कैफ़ियत थी– ''अली अकबर ख़ाँ का जन्म केवल सरोद के लिए हुआ है।'' उनकी जादुई शिरकत के सम्मोहन में दुनिया भर के अनेक कलाकार सरोद की ओर आकर्षित हुए। उनके द्वारा बजाये राग देश मल्हार एवं नट भैरव की सीडी आज भी संगीत रसिकों के लिए अनमोल ख़ज़ाना हैं। अक़बर ने कई रागों का सृजन किया। जिनमें कुछ ख़ास राग हैं– 'चन्द्रनन्दन', 'हिण्डोल–हेम', 'लाजवन्ती', 'भूप–माण्ड', 'भैरवी भटियार', 'गौरी मंजरी', 'मिश्र शिवरंजनी' और 'माधवी'। यह ऐसे राग हैं, जो मौजूदा दौर के किसी भी तन्त्रवादक के लिए बजाना आसान काम नहीं।

उस्ताद अली अक़बर ख़ाँ

14 अप्रैल, 1922 में अविभाजित भारत के शिबपुर, कोमिला (यह इलाक़ा अब बांग्लादेश में आता है।) में जन्मे अली अक़बर ख़ाँ ने गायन तथा वादन की तालीम अपने वालिद के अलावा चाचा फ़कीर अफ़ताबुद्दीन से ली। महज तीन साल के थे, तब से ही उनके वालिद बाबा अलाउद्दीन ने उन्हें संगीत की तालीम देनी शुरू कर दी थी। उनमें सुर, लय, ताल और मुरकियों की गहरी समझ पैदा की। लेकिन अली अक़बर ख़ाँ को संगीत में कोई दिलचस्पी नहीं थी। रियाज़

नायक

की बनिस्बत उन्हें खेलना-कूदना ज़्यादा पसंद था। जब उनकी यह हरकत बाबा अलाउद्दीन ख़ाँ को मालूम चली, तो वे बहुत नाराज़ हुए। अली अकबर की बेंतों से खूब पिटाई हुई। उसके बाद बाबा अलाउद्दीन खाँ ने उन पर नज़र रखना शुरू कर दी। 14 से 18 घंटे अपने पास बिठाकर, उन्हें शास्त्रीय गीत-संगीत की बारीकियाँ सिखाते और ख़ूब रियाज़ करवाते।

यह वह दौर था, जब पंडित रविशंकर भी अलाउद्दीन ख़ाँ के शार्गिद थे। बाबा के एक तरफ़ अली अकबर ख़ाँ बैठते, तो दूसरी ओर रविशंकर। वे दोनों को सितार और सुरबहार बजाना सिखाते। एक साथ दोनों रियाज़ करते। सच बात तो यह है कि यहीं से उस्ताद अली अक़बर ख़ाँ और पंडित रविशंकर की जुगलबंदी का आग़ाज़ हुआ। आगे चलकर देश के अनेक प्रसिद्ध संगीत समारोह में दोनों ने सितार-सरोद की संगीतमय जुगलबंदी की। इन दोनों ने साल 1939 में इलाहाबाद में सबसे पहले जुगलबंदी की। उसके पहले कभी किसी संगीत कार्यक्रम में सितार-सरोद एक साथ नहीं बजे थे। श्रोता मंत्रमुग्ध हो गए। पंडित रविशंकर ने अपने गुरुभाई उस्ताद अली अक़बर ख़ाँ के सरोद-वादन पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- ''वह इतने अद्भुत सुर की निजी कल्पना और विस्तार धीरे-धीरे कर सकता है, कि श्रोता अनायास ही सम्मोहन में बंध जाते हैं। उसके बजाने में यह जो मीठा-मीठा भाव है, उसमें प्रचंड प्रेम छिपा रहता है।'' (किताब-'राग-अनुराग' (आत्मकथा रविशंकर), पेज-283)

बहरहाल, अली अक़बर ख़ाँ ने अलाउद्दीन ख़ाँ साहब से ध्रुपद, धमार, ख़्याल व तराना आदि की तालीम हासिल की। वहीं अपने चाचा फ़कीर अफ़ताबुद्दीन से पखावज एवं तबला बजाना सीखा। नौ साल की उम्र से उन्होंने सरोद सीखना शुरू किया। गुरुओं की शिक्षा और रविशंकर, पन्नालाल घोष, अन्नपूर्णा देवी और निखिल बैनर्जी जैसे होनहार सहपाठियों की संगत में अली अक़बर ख़ाँ की शख़्सियत और उनके अंदर बैठा कलाकार ख़ूब निखरा। जब उनकी उम्र चौहदह साल के आसपास थी, तब उन्होंने इलाहाबाद में एक संगीत समारोह में अपनी पहली संगीत प्रस्तुति दी। बीस साल की उम्र आते-आते वे लखनऊ में अपनी पहली ग्रामोफ़ोन रिकार्डिंग करा चुके थे। उस्ताद अली अक़बर ख़ाँ लखनऊ आकाशवाणी में साल 1941 से लेकर 1943 तक स्टाफ आर्टिस्ट रहे। इसके बाद वे कुछ साल राजस्थान के जोधपुर स्टेट में भी रहे। उन्होंने वहाँ गायन के अलावा नई-नई संगीत रचनाएँ कीं। विद्यार्थियों को संगीत और वादन पढ़ाया-सिखाया। जोधपुर महाराजा हनवंत सिंह ने ही अली अक़बर ख़ाँ को 'उस्ताद' की उपाधि प्रदान की। साल 1947 में देश की आज़ादी के साथ ही रियासतें ख़त्म हो गईं। 1952 में एक विमान दुर्घटना में महाराजा हनवंत सिंह के निधन होने के बाद, उस्ताद अली अक़बर ख़ाँ मुंबई चले आए। उन्होंने शास्त्रीय संगीत समारोहों और रेडियो कार्यक्रमों में अपनी आमद-ओ-रफ़्त (आना-जाना) बढ़ा दी।

रवीन्द्र भारती विश्व विद्यालय, कोलकाता तथा ढाका विश्व विद्यालय, बांग्लादेश द्वारा उस्ताद अली अकबर ख़ाँ को 'डॉक्टर ऑफ लिट्रेचर' की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। उन्हें मैकआर्थर जीनियस ग्रांट से नवाज़ा गया। वहीं साल 1997 में संयुक्त राज्य अमेरिका ने 'नेशनल हेरिटेज फेलोशिप' दी। ख़ाँ साहब पाँच बार ग्रेमी पुरस्कार के लिये नामांकित किए गए। इस गौरव के बावजूद अली अकबर अपने वालिद बाबा अलाउद्दीन ख़ाँ द्वारा दी गई 'सुर सम्राट' की पदवी को सभी सम्मानों से ऊँचा दर्ज़ा देते थे।

उस्ताद अली अक़बर ख़ाँ के वादन में मींड, स्वरों की नई-नई रचनाओं की उपज, लयकारी व तान मिलाने की रीति बिल्कुल मौलिक है। उन्होंने अपनी शैली में वीणा और सितार की वादन तकनीकों के साथ-साथ गायिकी और तन्त्रकारी दोनों अंगों का अद्भुत मिलन किया है। उस्ताद अली अक़बर ख़ाँ द्वारा ईजाद की गई एक रचना 'गौरी मंजरी' की न सिर्फ़ संगीत विद्वानों ने जमकर तारीफ़ की, बल्कि श्रोता भी इसके दीवाने थे। यह ख़ास रचना उन्होंने 'नट', 'मंजरी' और 'गौरी' तीन रागों के सम्मिश्रण से तैयार की थी। अपने सुरीले सरोद-वादन से उस्ताद अली अक़बर ख़ाँ, थोड़े से ही अरसे में भारतीय शास्त्रीय संगीत के क्षितिज पर छा गए। उस वक़्त आलम यह था कि कोई भी बड़ा संगीत समारोह उनके बिना मुक़म्मल नहीं होता था। हर ओर उनकी धूम होती थी। पाँचवे दशक में देश भर के प्रसिद्ध संगीत समारोह में अपनी कला का परचम लहराने के बाद, उस्ताद अली अक़बर ख़ाँ ने विदेश का रुख़ किया। भारतीय शास्त्रीय संगीत के व्यापक प्रचार-प्रसार करने के लिये उन्होंने दुनिया भर में कई यात्राएँ कीं। साल 1955 में वे विश्वविख्यात आर्केस्ट्रा

संचालक येहुदी मेनुहिन के बुलावे पर अमेरिका गए। अमेरिकी टीवी के लिए उस्ताद सरोद वादन किया। ऐसा कारनामा अंजाम देने वाले पहले भारतीय शास्त्रीय कलाकार बने। उन्होंने दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में अपने कार्यक्रमों की कामयाब प्रस्तुतियाँ दीं। शास्त्रीय संगीत के अध्यापन और प्रसार के लिए साल 1956 में उन्होंने 'अली अक़बर संगीत महाविद्यालय, कोलकाता' की स्थापना की। भारतीय शास्त्रीय संगीत, ख़ास तौर पर सितार और सरोद के जानिब लोगों की दीवानगी बढ़ते देख, उन्होंने बर्कले कैलिफोर्निया (अमेरिका) में भी एक संगीत विद्यालय की नींव रखी। 'सान रफ़ेल स्कूल' की स्थापना के साथ ही उस्ताद अली अक़बर ख़ाँ संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ही हमेशा के लिए बस गए। अलबत्ता दुनिया भर की यात्राएँ करते रहे और भारतीय शास्त्रीय संगीत से लोगों को जोड़ते रहे। सेहत में गिरावट की वज़ह से ज़िंदगी के आख़िरी दौर में उनका भारत आना कम हो गया था। साल 1985 में उस्ताद अली अक़बर ख़ाँ ने संगीत महाविद्यालय की एक और शाखा बेसिल, स्विट्ज़रलैंड में स्थापित की।

एकल कार्यक्रमों के अलावा उस्ताद की भारत में पंडित रविशंकर और पश्चिम में येहुदी मेनुहिन एवं जॉन हैंडी जैसे नामचीन कलाकारों के साथ जुगलबंदी काफ़ी मशहूर रही। इसके अलावा उन्होंने शास्त्रीय संगीत के अलग-अलग फ़न के बड़े कलाकारों सरोद वादक निखिल बैनर्जी, वायलन वादक एल सुब्रह्मण्यम भारती और सितार वादक विलायत ख़ाँ के साथ भी जुगलबंदी की। उन्होंने विश्व के प्रसिद्ध संगीतकारों गिटार वादक जॉर्ज हैरिसन और रॉकस्टार बॉब डिलन, एरिक क्लैप्टन और रिंगो के साथ बड़े-बड़े म्यूजिक कंसर्ट किए।

शास्त्रीय संगीत में लोकप्रियता का ही सबब था कि उन्हें हॉलीवुड, हिंदी और बंगला फ़िल्मों में भी संगीत देने का मौक़ा मिला। लेकिन उन्होंने चुनिंदा फ़िल्में ही क़ुबूल कीं। मसलन चेतन आनंद की फ़िल्म 'आंधियाँ' (साल-1952), सत्यजीत रे की 'देवी' (साल-1960), ऋत्विक घटक की 'अजंत्रिक' (साल-1958) और तपन सिन्हा की 'क्षुधित पाषाण' (साल-1960)। 'क्षुधित पाषाण' के लिए उन्हें सर्वश्रेष्ठ संगीतकार के पुरस्कार से भी नवाज़ा गया। डायरेक्टर मर्चेंट आइवरी की 'द हाउस होल्डर', बर्नार्डो बर्टोलुसी-'लिटल बुद्धा' और 'द गॉडेस' जैसी हॉलीवुड फ़िल्मों के लिए भी उन्होंने संगीत रचा।

अपने वक़्त में उन्होंने अनेक क़ाबिल शागिर्द गढ़े। उनके प्रमुख शिष्यों में निखिल बनर्जी (सितार), शरण रानी (सरोद), आशीष खाँ (सरोद), ध्यानेश खाँ (सरोद), शिशिर कणाघर चौधरी (वायलिन), दामोदर लाल काबरा (सरोद) हैं। 1988 में देश के सर्वोच्च 'पद्म विभूषण' नागरिक सम्मान से उन्हें सम्मानित किया गया। 1974 में रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय, कोलकाता और ढाका विश्वविद्यालय, बांग्लादेश द्वारा शास्त्रीय संगीत में योगदान के लिए उस्ताद अली अक़बर ख़ाँ को 'डॉक्टर ऑफ लिट्रेचर' की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। 1991 में उन्हें मैकआर्थर जीनियस ग्रांट से नवाज़ा गया। वहीं साल 1997 में संयुक्त राज्य अमेरिका का कला के क्षेत्र में सबसे ऊँचा सम्मान, 'नेशनल हेरिटेज फेलोशिप' दी गई। ख़ाँ साहब को पाँच बार ग्रेमी पुरस्कार के लिये नामांकित किया गया। बावजूद इस गौरव के उस्ताद अली अक़बर ख़ाँ अपने वालिद बाबा अलाउद्दीन ख़ाँ द्वारा दी गई 'सुर सम्राट' की पदवी को सभी सम्मानों से ऊँचा दर्ज़ा देते थे। 19 जून, 2009 को 87 साल की लंबी आयु में अमेरिका के सैनफ्रांसिसको में उस्ताद अली अक़बर खाँ ने अपनी आँखें मूँद लीं।

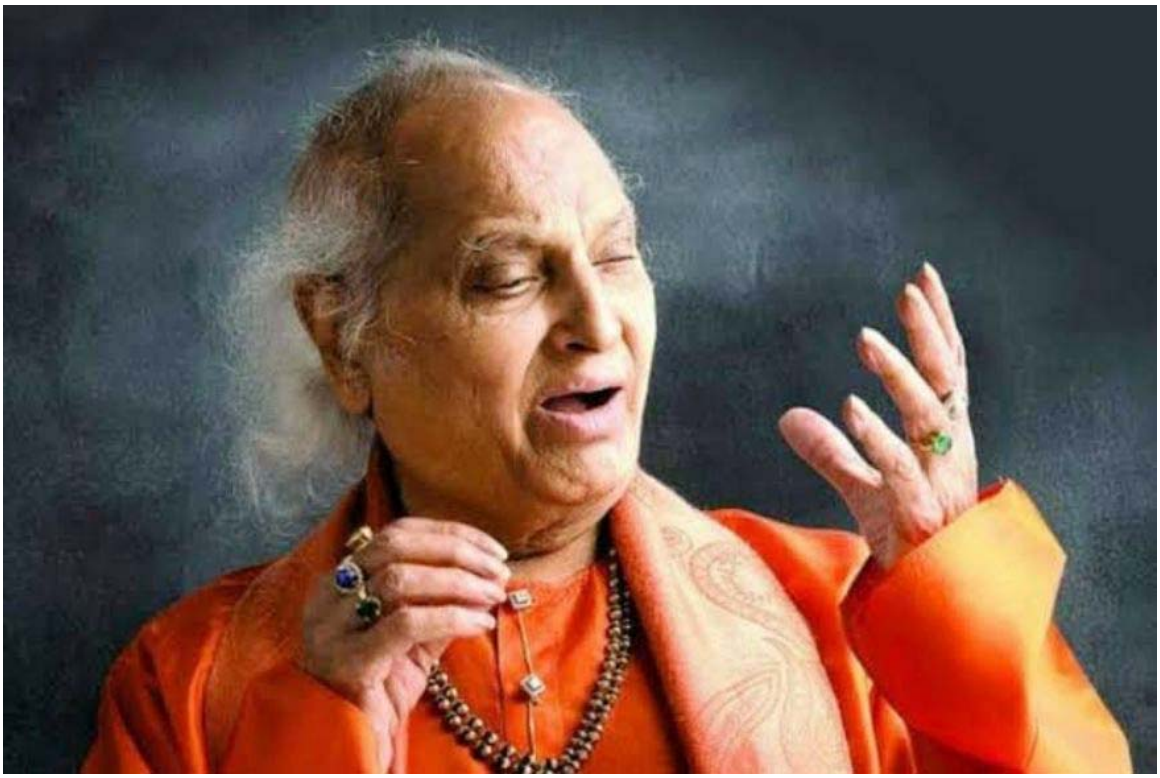

एक बार मैंने ये अनुभव किया है। जब एक बार मैं बद्रिकाश्रम में 1988 में गा रहा था, तो मैं ऊपर वाले 'सा' पर, ही खड़ा रह गया तारसप्तक के 'सा' पर मैं भूल गया कि मैं कितनी देर से खड़ा हूँ! और मैं खड़ा ही हूँ! साँस पेट से तो नहीं आ रही! ये जो कटपटियाँ हैं वहाँ से साँस की प्रक्रिया चल रही है और वो साँस जो है, ऊपर मस्तिष्क में जाकर चक्कर मारकर वापिस आ जा रही थी। दो बार चला गया। तीसरी बार जब गया तो मुझे अचानक ये लगा कि अरे! अपने आप ही सवाल-जवाब हो गया। अरे! ये तो समाधि है!

आनंद का वह राग-रस

रितु शर्मा

अंतर्लय

प्रसन्नता अपने आप में हो सकती है। ख़ुशी कोई दे सकता है और घटनाओं पर निर्भर करता है। एक घटना मुझे याद आती है, जो मुझे ख़ुशी से भर देती है। बड़े प्रोड्यूसर हैं उनका नाम है इस्माइल मर्चेंट। उन्होंने मेरा कार्यक्रम रखा और मुझको, मैं जहाँ ठहरा था 60 मील दूर लेने टेक्सी भेज दी, तो हमारे किसी एक शिष्य के साथ, हम गाड़ी में बैठ गए। अब, जब एक मकान पर ले गया तो वहाँ पर पता चला कि इस्माइल साहब नहीं हैं फिर दूसरे मकान में ले गया, वहाँ भी नहीं थे। तीसरे मकान के आगे उसने जब गाड़ी रोकी, तो उसने कहा, मैं देख कर आता हूँ कि हैं कि नहीं। तो मैं भी उतरकर धीरे-धीरे जाने लगा और देखा कि ड्राइवर तो जल्दी वापस लौट कर आ रहा है और देखा कि पीछे से किसी के दौड़ने की आवाज़ आ रही है। तो मैं रूक गया अचानक पीछे रूककर देखने के लिए मैंने मुड़कर देखा कि इस्माइल साहब नेकर और बनियान पहने, भाग के आ रहे है। उन्होंने कहा, पं. जी मैं एक्सरसाइज़ कर रहा था, इस स्थिति में मैं आपसे मिलना नहीं चाह रहा था लेकिन देखा कि आप भी लौट कर जा रहे हैं तो बहुत बुरा लगा। मैंने सोचा कि कोई बात नहीं, ऐसे ही चलते हैं।

तो आप यक़ीन मानिए कि इस बात ने हमें बड़ी ख़ुशी दे दी। हालाँकि कोई आदमी शायद बुरा भी मान जाए कि इस तरह से मुझसे आप कैसे मिलने आ गए। इस बात से मैं बहुत ख़ुश हो गया। वो कितने बड़े आदमी हैं और कार्यक्रम भी बहुत अच्छा हो गया इसकी वजह से अच्छा हुआ। इस हरकत से उन्होंने मुझे ख़ुशी दे दी।

जब आप कार्यक्रम में गा रहे हैं, आपने देखा कि महफ़िल में लोग प्रसन्न हो रहे है, वो स्थायी भाव होता है। देर तक आनंद देता है। ऐसे में आपसे कोई कुछ पूछे तो, कुछ कहा भी नहीं जाता। बस, ऐसा आनंद जो अगली सुबह तक भी वैसा ही ताज़ा स्मृति में बना रहता है। आप उसको कभी भी भूल नहीं पाते।

संगीत के स्वर का पता नहीं, किस भूमि से वे निकलते हैं। नाभि से स्वर निकलते हैं। शरीर जिसे गात्र–वीणा कहते हैं। गात्र माने शरीर और वीणा तो सब जानते ही हैं। गात्र वीणा में नाभि से हम गाते हैं। एक मैंने ये अनुभव किया है। कभी–कभी कण्ठ और मस्तिष्क से भी स्वर निकलते हैं, एक बार मैंने ये अनुभव किया है। जब एक बार मैं बद्रिकाश्रम में 1988 में एक कार्यक्रम में गा रहा था, तो मैं ऊपर वाले 'सा' पर ही खड़ा रह गया। तारसप्तक के 'सा' पर। मैं भूल गया कि मैं कितनी देर से खड़ा हूँ! और मैं खड़ा ही हूँ! साँस पेट से तो नहीं? ये जो कटपटियाँ हैं वहाँ से साँस की प्रक्रिया चल रही है और वो साँस जो है ऊपर मस्तिष्क में जाकर चक्कर मारकर वापिस आ जा रही थी। दो बार चला गया। तीसरी बार जब गया तो मुझे अचानक ये लगा कि अरे! अपने आप ही सवाल जवाब हो गया। अरे! ये तो समाधि है! बस वहीं खत्म हो गया! वो एक अज़ब चीज़ थी उसको आनंद कहो या क्या कहो। मैंने अपनी पत्नी को बताया। उन्होंने बताया कि ये तो समाधि का अनुभव है। वो अद्‌भुत आनंद था।

जब मैं रियाज़ पर बैठता हूँ तो आनंद लगातार आते ही रहता है। यदि कोई स्वर अचानक, एकदम से लग गया जिसे हम ढूँढ़ते रहते हैं तो उसके आनंद की तो सीमा ही नहीं रहती है। रुपया सिर्फ़ एक अनुभूति है और कुछ नहीं। एहसास है और उसकी कोई अनुभूति नहीं। रुपया दु:ख का कारण है। यदि है तो दु:ख है और नहीं है तो दु:ख है। और आदमी कभी संतुष्ट नहीं होता और और चाहिए।

संगीत और आध्यात्म जुड़ा है। आध्यात्म का मतलब भगवान को याद कर लिया वही काम संगीत करता है।

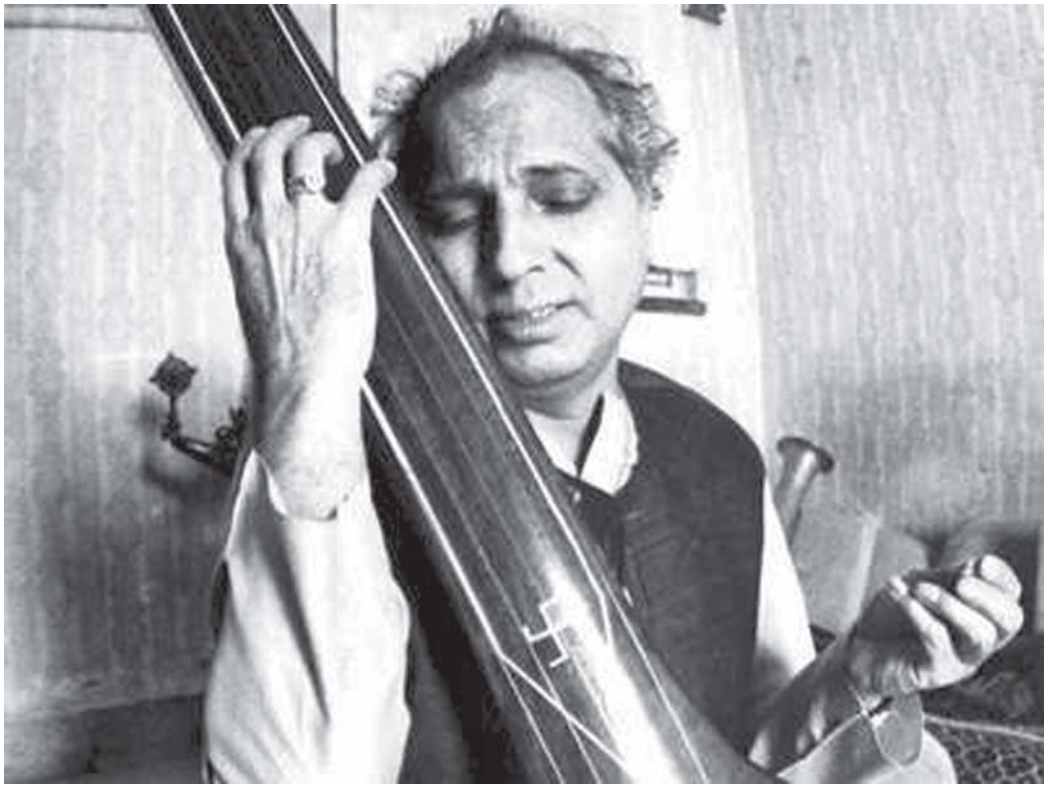

यदि कोई स्वर अचानक, एकदम से लग गया जिसे हम ढूँढ़ते रहते हैं तो उसके आनंद की तो सीमा ही नहीं रहती है।

नदी से माँगी माँ की बेटी हूँ

लोक गायिका **शारदा सिन्हा** से अनुलता राज नायर की मुलाक़ात

यूँ भोपाल में उनकी यह आमद पहले पहल तो नहीं थी, लेकिन इस दफ़ा उनका आना कुछ ज़्यादा ही अपना-सा लगा। भारत भवन के मंच पर अपने संगीत-साज़िंदों के साथ उनकी बैठक जमे उससे पहले होटल पलाश के कमरे में जमी हँसी-ठहाकों भरी महफ़िल को कैसे भुलाया जा सकता है। 'रंग संवाद' के लिए बातचीत तय हुई और तयशुदा समय पर जब सवाल-जवाब ने सिलसिला पकड़ा तो एक स्त्री कलाकार का भावुक मन यादों का छोर थामे बरसों पीछे छूट गए लड़कपन की आगोश में बिरमने लगा। क़िस्सा-दर-क़िस्सा एक दुनिया आबाद होने लगी। इस गुफ़्तगू में जब शारदाजी के बेटे अंशुमन, बेटी वंदना और शारदाजी के अनुजवत प्रिय उद्घोषक विनय उपाध्याय की संगत हुई तो माहौल कुछ गुलज़ार हो उठा।

शारदाजी, यथा नाम, तथा गुण की जीवंत प्रतिमूर्ति है। सरस्वती उनके पूरे व्यक्तित्व में बोलती है। लोक की चिंताओं में गहरी डूबी। वे भोजपुरी की अनन्य गायिका हैं जिन्होंने अपने अंचल की पूरी देशज परंपरा को अपनी स्मृति और कंठ में बचाकर रखा है। एचएमव्ही जैसी नामी कंपनी ने 'मैथिली कोकिला' नाम से एक कैसेट के ज़रिए इस नवोदित गायिका को पहचान के नए पंख दिए। लेखा-जोखा उठाकर देखें तो शारदाजी के खाते में सौ से ज़्यादा सीडी अलबम, कैसेट्स और हज़ार से ज़्यादा देश-विदेश में हुए सफल संगीत समारोहों की उपलब्धियाँ हैं। फ़िल्मों के लिए भी वे लोकगीत गाती रही हैं। राष्ट्रपति ने उन्हें पद्मश्री और पद्मभूषण से अलंकृत किया है। संगीत नाटक अकादेमी नई दिल्ली और लखनऊ की 'सोन चिरैया' लोक संस्था ने पुरस्कृत कर उनकी लोक धर्मी कला का मान बढ़ाया है।

अनुलता राज नायरः दुनिया जहाँ का प्यार-दुलार, मान-सम्मान और यश मिला आपको पर इस सफ़र की शुरुआत कब हुई?

शारदा सिन्हाः ये सवाल किसी भी गायक से आप पूछेंगी तो वो अक्सर यही कहेंगे कि उन्होंने बचपन से गाना शुरू किया पर मैं वास्तव में बहुत ही छोटी उम्र से गाने लगी थी। मैं किताबों में जब कविताएँ पढ़ती थी तो उसको गा-गा के पढ़ती थी, और याद करती थी। पिताजी टोकते भी थे कि तुम कविताओं को गा के पढ़ती हो। तब नहीं समझी थी पर अब समझी, और बड़े भाई भी बताते हैं कि बाबूजी इतने दूरदर्शी थे, ऐसी पारख़ी नज़र थी उनकी कि जब उन्होंने देखा कि मैं इतनी छोटी उम्र से कविता को गेय बना के याद कर रही हूँ तो वो समझ गए कि मेरे भीतर शायद कोई गायिका है। तो उन्होंने मुझे 'सिखलवाना' शुरू किया। यानी रुचि जिस तरफ़ है उस तरफ़ बढ़ने देने की सोच उस ज़माने भी उनमें रही इसलिए वो आज तक हमारी प्रेरणा हैं। बाबूजी ने उस वक़्त हमें संगीत सिखाना तय किया। तब लड़कियों को पढ़ाना ही बड़ी बात थी, गाना सिखाना तो कोई सोचता भी नहीं था। बाबूजी ने ऐसा प्रबंध किया कि गुरुजी घर पर आकर सिखा सकें क्यूँकि उस वक़्त लड़कियाँ बाहर जाकर नहीं सीख सकती थीं। बाबूजी श्री शुभदेव ठाकुर, सरकारी नौकरी में थे। एजुकेशन डिपार्टमन्ट में। तब बिहार और झारखंड एक था। ये 1960 के आस-पास की बात है और तब का गाँव समझिए। उस समय हम बाहर पढ़ रहे थे तब छुट्टियों में बाबूजी गाँव ले आया करते थे ताकि हम देखें-सीखें कि गाँव कैसा है! इसलिए गाँव से मेरा हमेशा नाता जुड़ा रहा। गर्मियों की छुट्टियों में यानी आम के महीने में आँधियाँ देखना, टिकोलों का गिरना, ये सब देख के, ख़ुद महसूस करके समझा। पढ़ा नहीं, बल्कि व्यावहारिक ज्ञान लिया। तो वहीं से मेरी शुरुआत हुई। घर में सब भाई और हम मिल के भजन वगैरह गाते थे। तुलसी और कबीर को ख़ूब गाया। बाद में गुरुओं से बाक़ायदा शिक्षा शुरू हुई। तब आठवीं कक्षा में रहे होंगे।

माँ कहती थी कि आँगन बेटी के बिना अच्छा नहीं लगता। नदी से माँगने का तो रिवाज़ है ही। तो कोसी नदी से माँगा। बेटी हुई तो कोठी-पाठी और न जाने क्या-क्या देंगे। माँ ने पूजा की और सबके कहने से अड़हुल का फूल आँचल में छान लिया। फिर कहा गया कि इसको रात में खा लेना, तो माँ ने खा लिया। शी वाज़ प्रेग्नेंट! ये प्राकृतिक भी हो सकता है। पर कहते हैं ना, कुछ तो बात होगी ही!... और संजोग से बेटी हो गई। माँ बहुत ख़ुश। गाँव में लोग मुझे 'कोसी की बेटी' कहते हैं।

रामचन्द्र झा जी थे, पञ्चगछिया घराना से, पंडित रघु झा जी थे, तो उन लोगों से घर पर ही संगीत की शिक्षा ली। दो-दो तीन-तीन दिनों की सिटिंग लगती थी। उन दिनों ऐसा था कि गुरुओं की ख़ूब सेवा ख़ातिर होती थी। उनके ख़ाने, पीने, सोने रहने सबका बहुत ही अच्छे से इंतिज़ाम किया जाता था। उस समय का जो गेस्ट रूम था वो बिल्कुल दरवाज़े पर होता था।

गुरुजी नियमित नहीं थे तो उनकी गैरहाज़िरी असर नहीं करती थी?

– नहीं-नहीं, गुरुजी होमवर्क या कहिए टास्क देकर जाते थे। तो उनके ना होने पर बाक़ायदा रोज़ नियम से रियाज़ करते थे। बाक़ी गाने, भजन, प्रार्थना तो चलती ही रहती थी। बड़े हुए तो और भी गुरुओं से सीखा जैसे- ग्वालियर घराने के सीताराम हरि डाँडेकर जी से और श्रीमती पन्ना देवी जी से ठुमरी दादरा।

शारदा जी अब तक की बातचीत में माँ का ज़िक्र नहीं आया? कुछ बताइए ना उनके बारे में।

– (कुछ देर सोचते हुए) देखिए हमारा समाज पुरुष प्रधान तो रहा ही है और बाबूजी चूँकि ज़्यादा ख़ुले विचारों के थे। माँ को, जिनका नाम सावित्री देवी है, उन्हें भीतर से लगता था कि लड़की को संगीत सिखा रहे तो लोग क्या कहेंगे? हालाँकि ऐसा नहीं था कि वो रोक रहीं हों। मेरे मायके में ये रोकटोक बिल्कुल नहीं रही। शायद बाबूजी का इतना सपोर्ट था, घर में पढ़ाई-लिखाई वाला माहौल रहा इसलिए कहीं कोई दिक्कत नहीं आई। माँ भी पढ़ी लिखी

थीं, उस ज़माने में मिडिल स्कूल की हेड मिस्ट्रेस रहीं, बाद में गृहस्थी सम्हालने के लिए नौकरी छोड़ दी। ये 1938/39 की बात होगी। तो सारे भाइयों के साथ मिल कर हम गाते रहे जबकि गायकी की कोई प्रथा हमारे ख़ानदान में नहीं रही। भाई कोई संगीत के क्षेत्र में आगे आए नहीं जबकि उनकी आवाज़ बहुत अच्छी थी।

बचपन का कोई क़िस्सा बताइए, खेत-खलिहान, लोक से जुड़ा।

– बचपन में बाबूजी हमको भाईयों के साथ खेत-खलिहान भेज देते थे कि जाकर देखो कैसे जुताई, रोपाई हो रही, कटाई हो रही। बिना देखे कैसे जानोगे कि धान कैसे कटता है। वो कहते हैं ना कि कहानियाँ लिखना हो, किरदार समझने हों तो यात्राएँ की जानी चाहिए, ये ठीक वैसा ही था। यानी ख़ुद अनुभव करना सिखाया बाबूजी ने। मेड़ों पर खड़े हम देखते रहते, मन ललकता कि हम भी काटें धान। वैसे ही आँगन में चूड़ा कुटाता था ओखली में ओखल और समाठ, उसको हाथ में लेकर कूटने की कोशिश करते। माँ बहुत डाँटती थीं कि हाथ में पड़ गया तो हाथ चला जाएगा। अनाज कूटने की ढेंकी चलते थे। ये सब समझिए कि लोक गीत के कंटेन्ट हैं।

धान काटने की मेहनत देखी आपने। तब ही तो ऐसे प्यारे श्रम गीत गाए- ''दिन भर के थकन माँदल घर जब आइब, रूसल पिया के जियरवा रिझाईब''। आपने लोक देखा, शायद ये कहना सही होगा कि आपने लोक जिया है। बताइए ना कुछ, कोई और ऐसा मीठा क़िस्सा।

– परिवार में अकेली बेटी रहे हम। कई सालों बाद पैदा हुई। बड़े माँग-चाँग के पैदा हुए। माँ बताती हैं कि तुमको हमने कोसी से माँगा है, कोसी नदी से। आप सोचिए बड़ी दिलचस्प बात है इतने सालों पहले भी मेरी माँ ने बेटी माँगी थी। उन्हें बड़ा शौक़ था कि उन्हें बेटी हो वह उसकी चोटी-पाटी करें, उसे सजाएँ। (ज़ोर से हँसते हुए)

माँ कहती थी कि आँगन बेटी के बिना अच्छा नहीं लगता तो नदी से माँगने का तो रिवाज़ है ही ना। तो गंगा नहीं, कोसी नदी से माँगा। बेटी हुई तो कोठी-पाठी और न जाने क्या-क्या देंगे। गाँव में लोग 'कोसी की बेटी' कहते हैं। कहते हैं कि माँ ने पूजा की और सबके कहने से अड़हुल का फूल आँचल में छान लिया, फिर कहा गया कि इसको रात में खा लेना, तो माँ ने

एकदम प्रोफेशनली स्टेज पर गाने का अवसर 1974 में मिला। दरभंगा में दुर्गा पूजा के अवसर पर कार्यक्रम था। वो पहला लाइव शो था। उस समय मेरी शादी को चार साल ही हुए थे। पति का बहुत सहयोग रहा। हम हारमोनियम ट्रंक में लेकर जाते थे। लोगों की बातों, प्रतिक्रियाओं से थोड़ा डरते भी थे। उस समय हमने शर्त रखी थी कि हमारे गाने के बीच अगर कोई सीटी बजा देगा या कोई शोर करेगा तो हम उठ के चले जाएँगे।

संवाद के दो स्त्री स्वर: शारदा सिन्हा के साथ अनुलता

खा लिया। शी वाज़ प्रेग्नेंट! ये प्राकृतिक भी हो सकता है पर कहते हैं ना कुछ न कुछ तो बात होगी ही... और संजोग से बेटी हो गई। माँ बहुत ख़ुश। ...जानती हो अनुलता, ये बात मैंने पहले किसी ओर से कहीं भी नहीं।

आपसे मिल कर बात करके मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है जैसे बरसों से जानती हूँ, जैसे माँ की गोद में सर रखे गाँव दुआरे की, ननिहाल की, खेल खलिहान की, गीत-गानों की कहानी सुन रही हूँ। जैसे कोई माँ अपनी विरासत सौंप रही हो मुझे। आपके बेटे अंशुमान और बिटिया वंदना भी उतने ही प्यारे। आपने भी छुट्टियों में गाँव आने की बात की। क्या आप शहर रहती थीं?

– हाँ, मैं पटना में रही। पहले क्लास छः में वनस्थली में दाखिला लिया पर वहाँ रह नहीं पाई, बहुत दूर था। फिर पटना में बाँकीपुर हाई स्कूल में पढ़ी, जो सरकारी स्कूल था पर बहुत अच्छा और सबसे ख़ास बात कि वहाँ म्यूज़िक था और इसी कारण कॉनवेंट या और किसी अँग्रेज़ीदाँ स्कूल कॉलेज मैंने नहीं चुने।

शारदा जी, आपकी बिंदास हँसी और आँखों की चमक देख कर मुझे लग रहा है कि आप बचपन में शरारती रही होंगी? अपने गाँव हुलास की कुछ चटपटी बातें हमें भी सुना दीजिए।

– (ज़ोर से हँसते हुए) बचपन में बाबूजी धान कटाई के समय खेत भेजते कि चोरी-चारी ना हो, ज़रा नज़र रखना। तो हम और भाई वहाँ ऐसे बात करते कि किसी को समझ ना आए क्यूँकि मैथिली बोली तो सब जान जाएँगे। यहाँ बता दूँ कि हम बातचीत मैथिली में ही करते थे हालाँकि गाया मैंने सभी भाषाओं में है- मगही, बज्जिका, भोजपुरी...। तो हमने अपनी भाषा ईजाद की और उल्टा करके बोलना-गाना भी सीख लिया। हम खेत की मेड़ों पर गाते थे- ''झेमु यानिदू लोंवा बिरास न झोमस'' 'मुझे दुनिया वालों, शराबी न समझो' गाते तो लोग नाम धरते कि ठाकुर साब अपनी बेटी को कैसा संगीत सिखा रहे हैं। (हँसती हैं ज़ोर से) ऐसे ही ग्वाली, याने जहाँ बैल-गाय बाँधते थे वहाँ हम बैलों के साथ जुगलबंदी करते थे। भूसाई नाम का बैल था, काली आँखों वाला, और एक था झनक सिंह। ये नाम इसलिए कि उसको कहीं ले जाना हो तो पहले दौड़ाना पड़ता था, यानी वार्मअप करना होता था, वरना उसको 'झनक' लगती थी। तो ये दोनों बैल मेरा गाना सुनते और अपना गला खखार के अआ... करने लगते। (ठहाका लगाते हुए गाने लगीं) गाँव से, जानवरों से बड़ा लगाव रहा मेरा शुरू से। कितना बढ़िया था ना उस समय कि बाहर नौकरी करने को निकले अधिकतर लोग रिटायरमेन्ट के बाद गाँव चले जाते थे। घर तो वहीं होता था ना।

वो पहला मौक़ा कौन सा था जब आपने पब्लिक्ली गाना गाया। वो कहते हैं ना ब्रेक का मिलना?

– उसके दो स्तर मानते हैं हम। एक तो प्रोफेशनल स्तर और एक स्कूली। जब हम स्कूल में थे तो हर 15 अगस्त को, 26 जनवरी को राजभवन में जाने की बात होती थी तब हम हमेशा जाते थे और सबसे आगे रहते थे। उसी क्रम में हमारे दूसरे राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन आए थे पटना, तो हमने उस समारोह में भी हिस्सा लिया था। मणिपुर नृत्य किया था हमने। बाक़ायदा सीखा था हमने और शौक़ भी बहुत था। फिर गाँव का अनुभव है- जहाँ नाटकों के बीच में गाने के अवसर मिले। लेकिन एकदम प्रोफेशनली स्टेज पर गाने का अवसर 1974 में मिला। दरभंगा में दुर्गा पूजा के अवसर पर कार्यक्रम था। वो पहला लाइव शो था। उस समय मेरी शादी को चार साल ही हुए थे। पति का बहुत सहयोग रहा। तो उस वक़्त हम हारमोनियम ट्रंक में लेकर जाते थे। लोगों की बातों, प्रतिक्रियाओं से थोड़ा डरते भी थे। उस समय हमने शर्त रखी थी कि हमारे गाने के बीच अगर कोई सीटी बजा देगा या कोई शोर करेगा तो हम उठ के चले जाएँगे। तब संचालक ने ऐसा न होने का वादा किया था। हालाँकि अब ऐसा नहीं लगता। सीटी से भी अब भय नहीं लगता। तब हमने भजन और गीत गाए क्यूँकि हमने रेडियो से लाइट म्यूज़िक (सुगम संगीत) से ऑडिशन पास किया हुआ था जिसके तहत गीत, ग़ज़ल और भजन आते थे। आज तीनों विधाएँ अलग कर दीं गईं हैं।

आपको लोक गायिका के रूप में पहचान कब और कैसे मिली?

– सबसे पहले एचएमवी में जो रेकॉर्डिंग हुई वो संस्कार गीत था। 1971 में, तभी हमने लोक संगीत गाया। सच बोलें तो इतना कुछ समझता भी नहीं था तब। हमने तो वही गाया जो रोज़मर्रा में शामिल था। जैसे भैया की शादी में नेग माँगने जो गाया था, जब द्वार छेंकती हैं ना बहनें? कि शादी करके बहु को लेकर आया है तो गृहप्रवेश से पहले भैया नेग दे दो तब अंदर जाने देंगे- तो चाची-मामी बोलीं, इकलौती बहन होने से क्या बिना मेहनत नेग पा जाओगी? गाओ तो मिलेगा। तो हमने उसी समय उन सबसे पूछ के जो गाया था वही पहली रेकॉर्डिंग हुई। ''द्वार के छेकाई नेग पहिले चुक्कड़यों दुलरवा भैया, तब जाइह कोहबर अपन, हो दुलरवा भैया''।

ग्रैमोफोन कंपनी एचएमवी ने टैलेंट हन्ट किया था। वो शहर-शहर घूम रहे थे। पहले राउन्ड में डिसक्वालीफाय हुए तो बहुत दुख हुआ, सोचा अब क्या करना, बिगाड़ लेते हैं आवाज़, गला ही ख़राब कर लेते हैं। तब हमारे पति ने कहा दोबारा ट्राइ करेंगे, दोबारा मौक़ा माँगा, और मौक़ा मिला। हमने अबकी ख़ूब अच्छे से गाना गया। फिर वहाँ मौजूद लोगों ने हमसे कहा, वहाँ भीतर जाकर मिल लीजिए। हम जानते नहीं थे किसी को। वहाँ चमचम बनारसी साड़ी पहने, पान खाते हुए, कोई बैठी थीं, हमें दिग्गज-सी कोई लगीं। किसी ने पूछा पहचानती हैं? ये बेगम अख़्तर जी हैं। हम तो बस उनके रौब को देख पाये, पैर छू के प्रणाम किया तो वो बोलीं, 'बेटे आवाज़ तो तुम्हारी अच्छी है, रियाज़ करोगी तो आगे जाओगी।' हम ऑडिशन पास हुए और दो गाने एचएमवी में रेकार्ड हुए। जानती हो, वहाँ बेगम अख़्तर कोई ऑडिशन सुनने नहीं आई थीं। वो तो संयोग था कि जब वो वहाँ थीं तो मेरा गाना हुआ, उन्होंने सुना और आशीर्वाद दिया। फिर हमने उनकी बहुत सी ग़ज़लों को सीखा और गाया। एक एलबम भी निकला है- 'किसी की याद' जिसकी पहली ग़ज़ल है- ''मौसम है प्यारा-प्यारा, कितना रंगीन नज़ारा।

मुझे लगता है कि शारदा जी की ग़ज़लों को लोकगीतों ने ढाँक दिया। फ़िराक़ गोरखपुरी और गोपाल सिंह नेपाली को गाने के बाद भी शायद बहुत कम लोगों तक आपकी ग़ज़लें पहुँची और शायद इस वजह से ये मलाल रहा क्या कि आपके चाहने वाले बिहार, यूपी तक सिमटे?

– मलाल तो नहीं पर ये सच ज़रूर है। अब कहीं ग़ज़ल गाना भी चाहूँ तो लोग लोकगीतों की फ़रमाइश करने लगते हैं। फोक के कई एलबम आए और सभी ख़ूब हिट हुए। ख़ूब प्यार मिला लोगों का।

एक बड़ी दिलचस्प बात बताती हूँ, कि एक एलबम आया, दुलरवा भैया, तब विनायल रेकार्ड हुए करते थे। अब समस्या थी कि सुनूँ कैसे? प्लेयर था नहीं। तो हम अपने पति को कहते कि जाकर चौक पर बजवाइए। और फिर लाउड स्पीकर पर बजते उस गीत को हम अपने घर की बालकनी में सुनते थे। फिर बाद में एचएमवी की रॉयल्टी आई तब जाकर प्लेयर ख़रीदा। इसी से याद आया कि पहली रेकॉर्डिंग की रॉयल्टी 73 या 74 रुपए आई थी। बाँछे खिल गईं थीं... रे बाबा! हम इतने ख़ुश, और 26 रुपए की लखनवी चिकन की साड़ी ख़रीद लिए थे। साड़ी का अब भी बहुत शौक़ है। बड़ी सी लाल बिंदी और बढ़िया साड़ी।

शारदा जी आपने कितने ही गीत गाए, न जाने कितने एलबम निकले, कुछ नाम लीजिए ना जो आपको ख़ास लगते हों।

– मैथिली कोकिल विद्यापति जी को समर्पित अलबम का ज़िक्र करना चाहूँगी- श्रद्धांजलि 'अ ट्रिब्यूट टू मैथिल कोकिल विद्यापति'। ये उस समय मैथिली के पहले पहले एलबमों में था और विदेशों तक प्रसिद्ध हुआ- ''कनक भूधर शिखर वासिनी''...। ये एल्बम एचएमवी से आया था, इसके उद्घाटन में गवर्नर हाउस से आर्मी का बैंड आया था। इसमें पंडित नरेंद्र शर्मा जी की कॉमेंटरी थी, सूत्रधार विजय चौधरी और उस्ताद निजामुद्दीन ख़ाँ साहब का तबला। हिन्दी कॉमेंटरी की वजह से ये ज़्यादा लोगों तक पहुँचा, शायद अँग्रेज़ी में भी होती तो और अच्छा रहता। भिखारी ठाकुर जी के बिदेसिया का भी नाम लूँगी।

कितनी सुखद बात है ना कि आपने अपना संगीत बच्चों को भी दिया। जैसा कि मालूम हुआ, आपकी बेटी वंदना ने गोद में, आपके सीने से लग कर दूध पीते हुए संगीत अपने भीतर उतारा। माँ के लंबे-लंबे रियाज़ शायद गर्भ से ही उनके भीतर भी असर कर गए। अब आख़िरी सवाल, जो भीगे हुए, तीज-त्योहारों वाले बारिश के मौसम से जुड़ा है। कुछ कजरी, झूला की बात हो जाए।

अपने युवा काल में शारदा सिन्हा

गुरुजी होमवर्क या कहिए टास्क देकर जाते थे। तो बाक़ायदा रोज़ नियम से हम रियाज़ करते थे। बाक़ी गाने, भजन, प्रार्थना तो चलती ही रहती थी। गुरुओं से घर पर ही संगीत की शिक्षा मैंने ली। दो-दो, तीन-तीन दिनों की सिटिंग लगती थी। उन दिनों गुरुओं की ख़ूब सेवा-ख़ातिर होती थी।

– कजरी देखा जाये तो लोक गीतों का एक आधार कहा जा सकता है। एक बड़ा सेक्शन है कजरी। कजरी, चौमासा, बारामासा, झूला इन चीज़ों का लोक गीतों में बहुत महत्व है। ''सावन के आई महीनवा हो सखी गावा कजरिया।'' ये सुंदर छोटी सी कजरी है। वैसे ही जब-जब मेघ, बिजली चमकती है, कड़कती है, जब मेघ बरसना शुरू होता है तब नायिका को अपने प्रीतम की बहुत ज़्यादा याद आती है। वो विलाप करती है, खोजती है, याद करती है, मेरा पति, परदेस है वो आया नहीं। इससे जुड़ा गीत है- ''सखी रे, श्याम नहीं घर आए, बदरा घिर-घिर आए न।''

ऐसे ही इस तरह से महाकवि विद्यापति की लिखी रचना, उसमें मैंने गाया- ''आली रे प्रीतम बड़ निर्मोहिया।'' पावस की जहाँ तक बात है वो, पावस जिसको मल्हार कहते हैं। मुझे याद है कि काशी विद्यापीठ में जब कार्यक्रम हो रहा था। मैंने गाना शुरू किया और अचानक से बादल बरस पड़े। वो बारिश का ही दिन था, अगस्त का माह था- ''भादों रहन अंधियारी बदरिया छाई रे रामा।'' ये कजरी मैं गा रही थी। जैस ही ''मोरे राजा केवड़िया खोल रस की बूँदें पड़ी'' ये गाया, बारिश की बूँदें पड़ना शुरू हो गई। आडियन्स इधर-उधर बिखरने लगी। कुर्सियों को सिर पर लेकर सब खड़े हो गए। लेकिन वो गए नहीं, इतनी बारिश में भी सुनते रहे, और उसका लुत्फ़ उठाते रहे। मैं वो ज़िंदगी भर भूल नहीं सकती।

बारिश, बूँदें, खेत खलिहान उत्सव... कितना रंग और सुर से भर देते हैं ना जीवन को। हर भाव के तो हैं लोक गीत। कमाल का देश है भारत और उसकी सुरीली विरासत आपसे विदा लें उसके पहले कुछ और गीत गुनगुनाइए ताकि भीतर सुरीली आहट देर तक बनी रहें।

– ''कैसे खेले जाइबु सावन में कजरिया। बदरिया घिर आई ननदी।'' देखिये यहाँ पे नोंक-झोंक प्रीतम वाला न रहकर ननद के साथ हो रहा है- ''तू तौ जात हओ अकेली, कोई संग न सहेली, गुंडे रोकीली है तोहरी डगरिया...'' अब सावन में कजरी तो सब गाते हैं लेकिन भादो के भी ख़ास गाने हैं- ''अरे रामा भादो रैन अंधियारी बदरिया छाई-छाई रे रामा।'' ऐसे ही झूला गीत हैं- जन्माष्टमी में ख़ूब गाया जाता है... ''झूला लागे कदंब की डारी झूले कृष्ण मुरारी न झूला लागे कदंब की डारी...''। अहा! आनंदित हूँ... कानों में भौरें गुंजन कर रहे, मन ऊँची पींगें भरने लगा है...

ऋतुराग

बादल, बयार और बौछारों का मौसम अब अलविदा होने को है। लेकिन मन की भीगी ज़मीन से उठी मटियारी महक कुछ ऐसी है कि मेह का मोह छुड़ाए नहीं छूटता। हरे सुरों में सपनों का इन्द्रधनुष मानों अब भी खिल रहा है। मेहंदी के रंग, पीगें भरता झूलों का संग और कजरी के छंदों में छिटक आयी जीवन की उमंग से ऋतु का दामन अभी रीता नहीं है। राग के सप्तक में, साज़ों से उठती गमक में, घुंघरूओं की झंकार में, नृत्य की देह गतियों में और चित्रों की चौखट में ये दस्तकें अभी सुनी जा सकती हैं। 'रंग संवाद' के इस अंक में पावस की पुलक को अँजोरते पन्नों को पैबस्त करने का इरादा रहा। इन पृष्ठों पर जीवन और प्रकृति की लय और लालिमा को थाम रहे हैं– *श्रीराम परिहार, संजय पटेल, शिफाली, अनुराग तिवारी और स्वरांगी साने।*

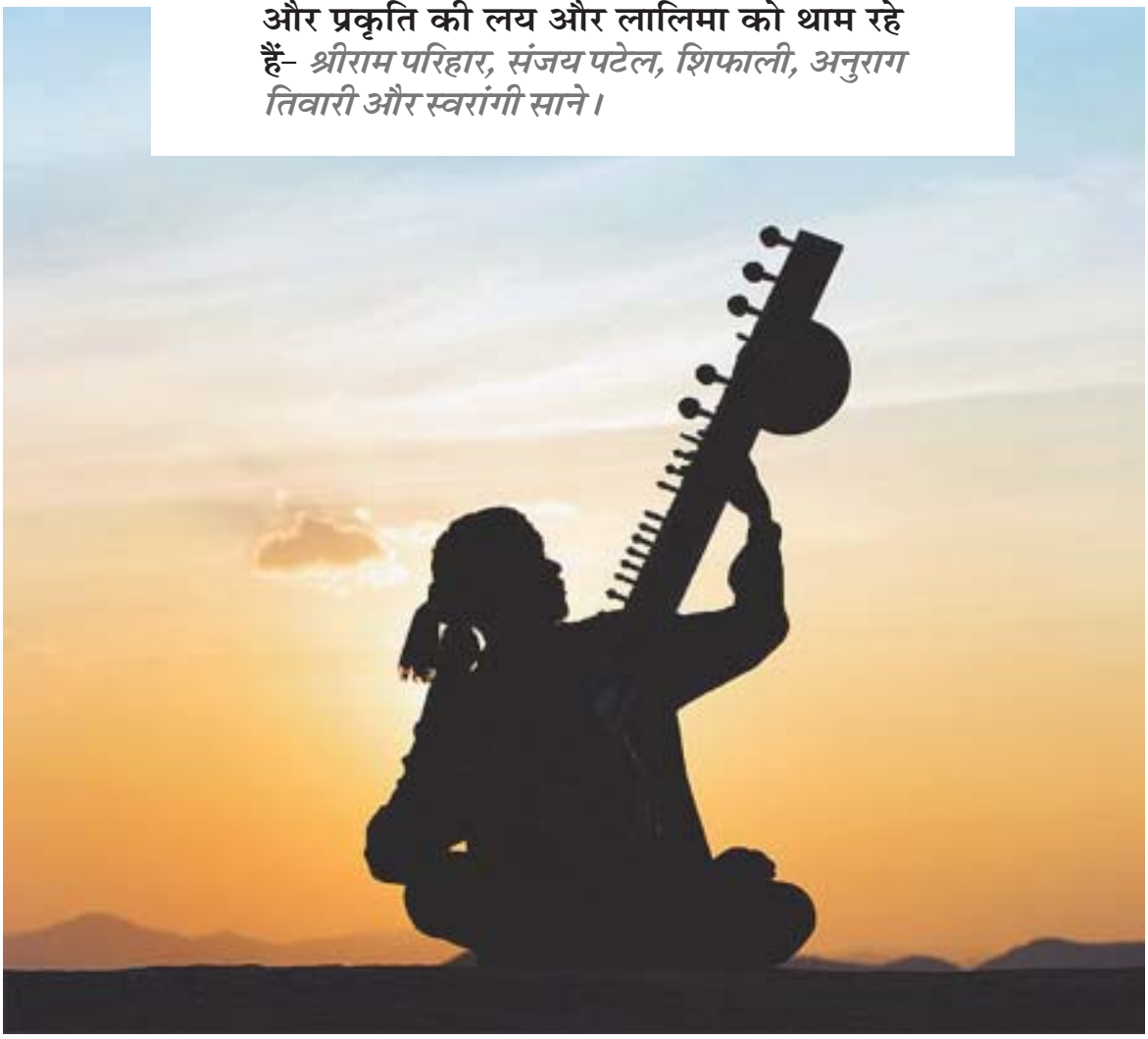

छाया : फाइन आर्ट अमरिका

वर्षा-जल पर
काग़ज़ की नाव

वर्षा का एक संगीत होता है। झर-झर झरती बरसात की धुन को ध्यान से सुनने पर लगता है; आसमान से मोहन वीणा के सधे हुए स्वर धरती तक आ रहे हैं। यह स्वर बूँदों का उल्लास है। उनकी हँसी है। आकाश में लटकी और बादलों में थमी बूँदों को धरती की गोद मिल जाती है।

श्रीराम परिहार

वर्षा ऋतु जीवन का उल्लास है। यह उल्लास निसर्ग का भी है। सृष्टि-जीवन का भी है। रचना-सृष्टि का भी है। ऋतु-चक्र का भी है। धरती का अपनी धुरी पर घूमने का भी है। कृषक का भी है। आँगन की तुलसी का भी है। खेतों की हँसी का भी है। तिनकों पर ठहरी बूँदों का भी है। नदी-कूप-सरोवर का भी है। पत्र-पत्र पर अठखेलियाँ करती हरीतिमा का भी है। धरती की ममता का भी है। आकाश के दुलार का भी है। निविड़ अँधेरे में उछलती बिजुरी का भी है। बादलों से छिया-छितोली खेलते सूरज का भी है। मेघमालाओं की गोद में छिपकर सो जाने वाले चन्द्रमा का भी है। जल-बूँदों के जन्मोत्सव का भी है। सबकी आषाओं-अभिलाषाओं के सिंचन का भी है। अधरों से स्वरित होते गीतों का भी है। बिछोह में उठती हृदय की हूक का भी है। भजन-भक्ति-कीर्तन करने का भी है। पर्वों का भी है। उत्सवों का भी है। अनुष्ठानों का भी है। आम की डालों पर बँधे झूलों का भी है। घर-द्वार-व्यापार-धन्धों का भी है। बाज़ारों-दुकानों के हर्षाने का भी है। पगडंडी, गली, सड़क, चौराहे, पथ, राजपथ की मुस्कुराहट का भी है। नयी-नयी योजनाओं का भी है। नयी कक्षा में नये अध्यायों को पढ़ने-गुनने का भी है। अनजानी राहों पर चलते-चलते नयी सफलता के शिखरों पर चढ़ते चले जाने का भी हैं। वर्षा जीवन-धन है। जीवन-प्राण है। वर्षा जीवन है।

वर्षा नैसर्गिक होती है। वर्षा होती ही है; कि सबको अपनी नैसर्गिक पहचान मिले। वर्षा के कारण ही सबका नैसर्गिक विकास होता है। विशेषकर धरती के उन क्षेत्रों का जहाँ वर्षा सीधे बादलों से धरती पर आती है। जहाँ यह जल-बूँदों के रूप में नहीं बरसती, वहाँ जल के अनेक सगुण-निर्गुण रूपों में यह उत्सव रचती रहती है। पर है सब जगह इसका पसारा। एक बूँद का ही सकल पसारा ब्रह्म और जगत रूप में भी है। बूँद के या जल के नाना रूपों में इसका प्रसार सर्वत्र है। यह ही विकास और खुलने-खिलने का मौसम सिरजती है। वर्षा के कारण ही चराचर के भीतर बहुत कुछ घटता रहता है। उसके अनुभव ही प्रत्येक को अपनी पहचान देते हैं। हम अपनी नैसर्गिक मौलिकता को पहचानने का उपक्रम वर्षा में भीगते हुए और वर्षा के अनुभवों और परिणामों का पाकर ही करते

हैं। हम अपनी नैसर्गिक मौलिकता को पहचान लें; पा लें, तो बात कुछ और होती है। वर्षा जीवन में प्रश्नों के समाधान लेकर आती है। जिस व्यक्ति के पास समाधान करने की शक्ति जितनी अधिक होगी, उसके पास सम्बन्धों का विस्तार करने का अनुभव अधिक होगा। वर्षा गहरे अनुभव देती है। अनुभव जीवन के वर्षा-जल की उपज है। अनुमान गलत हो सकता है, पर अनुभव कभी ग़लत नहीं होता है। अनुमान कल्पना-मन की उपज है। अनुभव जीवन की सीख है। प्रार्थना या भजन-कीर्तन जीभ से नहीं; हृदय से होता है। वर्षा बादलों के जीवन-रस को निचोड़कर होती है। वह मेघ वर्षण तो है; मेघ द्रुरन भी है। मेघ-द्रवण है। बूँदों के विस्तार और प्रसार में धरती-आकाश के सम्बन्धों की प्रगाढ़ता है। मेघ धरती-आकाश का सम्बन्ध-कलश है। वर्षा सम्बन्ध-रस है।

वर्षा का एक संगीत होता है। झर-झर झरती बरसात की धुन को ध्यान से सुनने पर लगता है; आसमान से मोहन वीणा के सधे हुए स्वर धरती तक आ रहे हैं। यह स्वर बूँदों का उल्लास है। उनकी हँसी है। आकाश में लटकी और बादलों में थमी बूँदों को धरती की गोद मिल जाती है। वर्षा और वर्षा की बूँदें अपने होने की सार्थकता धरती के आँचल में ही पाती हैं। बादलों के संग यह गगन-विहारी असंख्य-असंख्य जल इकाइयाँ पृथ्वी पर आती हैं। नृत्य, गायन, वादन तीनों एक साथ प्रस्तुत कर संगीत-सभा का आयोजन करती है। संगीत की रचना में वर्षा की महती भूमिका रही है। मुझे तो वर्षा की सुर-धुनि के साथ-साथ घर की ओलतेन से लय में गिरती जलधार की टपर-टपर, टप-टप में मोहक संगीत सुनाई देता है। पहाड़ों पर वर्षा में मृदंग बजता है। पहाड़ पर वर्षा होती है; तो जब एक साथ सैकड़ों-करोड़ों बूँदें झाड़ों के पत्तों पर विशेषकर सागौन के पत्तों पर गिरती हैं; उसे सुनकर लगता है; सैकड़ों मृदंगों पर करोड़ों थापें एक साथ पड़ रही हैं। पहाड़ों पर संगीत सभा हो रही है। आक्षितिज फैला वानस्पतिक संभार श्रोता-दर्शक है। धरती का आधार है। पहाड़ों का मुक्ताकाश मंच है। निसर्ग का गायन है। पवन भीग रहा है। पक्षी सम्मोहित हैं। इन्द्रधनुष की सतरंगी यवनिका आकाश तक उठ गयी है। पृथ्वी पर वर्षा का समारोह देख-सुनकर बौराए बदरा ढोल बजा रहे हैं। बिजुरी की तन्वंगी देह सारंगी के तार की तरह झंकृत हो जाती है। महानिलय में, वसुन्धरा के महाप्रांगण में वर्षा-महोत्सव अपने अभीप्सित अर्थ पाता हैं। मेघ मल्हार का जन्म होता है। वर्षा निसर्ग का संगीत-उत्सव है।

पहाड़ों पर वर्षा में मृदंग बजता है। पहाड़ पर वर्षा होती है; तो जब एक साथ सैकड़ों-करोड़ों बूँदें झाड़ों के पत्तों पर विशेषकर सागौन के पत्तों पर गिरती हैं; उसे सुनकर लगता है; सैकड़ों मृदंगों पर करोड़ों थापें एक साथ पड़ रही हैं। पहाड़ों पर संगीत सभा हो रही है। आक्षितिज फैला वानस्पतिक संभार श्रोता-दर्शक है। धरती का आधार है। पहाड़ों का मुक्ताकाश मंच है। निसर्ग का गायन है। पवन भीग रहा है। पक्षी सम्मोहित हैं। इन्द्रधनुष की सतरंगी यवनिका आकाश तक उठ गयी है। पृथ्वी पर वर्षा का समारोह देख-सुनकर बौराए बदरा ढोल बजा रहे हैं।

वर्षा होती है। किसान की कल्पनाओं को पंख लग जाते हैं। खेत हँसते हैं। किसान के पाँवों में लगी मिट्टी मुस्कुराने लगती है। फसलें लहलहाती हैं। किसान-पत्नी की आँखों में चमक आ जाती है। बेटी के विवाह का मण्डप सजने लगता है। मन बधावा-गीत गाने को आतुर हो जाता है। सयानी होती बेटी के अब हाथ पीले होंगे; इस आशा में उसके कपोलों पर ललाई और हाथों में पीताभा उभर आती है। माटी-पुत्र किरसा खेत में खड़ा-खड़ा भी वर्षा में भीगता है। उसकी देह का पसीना धुलता है। हाथ का मैल छूटता है। मन का विषाद हटता है। बेटे की पढ़ाई-लिखाई की चिन्ता का रंग बह जाता है। पिता का आशीष से उठा हाथ अदृश्य में दिखाई देता है। माँ के द्वारा परोसे गये भोजन का स्वाद जिह्वा पर चिहुकने लगता है। सगे-सम्बन्धी सब बहुत अपने लगने लगते हैं। सासरे में उसकी बाट-जोहती बहन की याद आने लगती है। मन काँच-सा हो जाता है। खेत के बीच खड़े अम्बा की डाल पर बैठी कोयल पत्तों में से झाँकती है। मेड़ पर खिलखिलाते सागौन के झाड़ों में डीकुर फूटने लगती हैं। हरी-हरी घास गायों-भैंसों के थनों में दूध बनकर डबडब भर जाती है। ढोर घर की ओर चल पड़ते हैं। खेत और पशु-पक्षी, किसान और गृहलक्ष्मी, जड़ और चेतन, हरे और सूखे, उदास और हर्षित, संन्यासी और वैरागी, घर और भवन, कुटिया और झोपड़ी सब वर्षा के आने से, वर्षा के होने से, वर्षा में नहाकर बहुत कुछ नये-नये हो जाते हैं। किसान के खेत में ट्रेक्टर घुर्र-घुर्र करता है। बीजों को धरती को अर्पित करता है। निबन्धकार/रचनाकार की कलम काग़ज़ पर चलती है। शब्द-शब्द बीज में युगों के संस्कार जागने लगते हैं। पंक्ति-पंक्ति में संस्कृति के इन्द्रधनुष अर्थ खोलने लगते हैं। वर्षा अनन्त काल से संस्कृति-सर्जक है।

जैसे 'कदली, सीप, भुजंग मुख, एक बूँद गुण तीनि' होते हैं। वैसे ही बरसा भी अलग-अलग मन-मस्तिष्क के अनुसार अलग-अलग ढंग से अनुभव होती है। वर्षा की बूँदे तो एक-समान गुण-धर्म वाली होती हैं। पर जब वह कदली में गिरती है, तो कपूर बन जाती है। सीप में गिरती है, तो मोती बनती है। सर्प के मुख में गिरकर विष हो जाती है। गाँव खुशियाँ मनाता है। शहर तटस्थ रहता है। नगर उदासीन रहता है। सबके वर्षा से जुड़े हित अलग-अलग होते हैं। लाभ-लोभ भिन्न होते हैं। काम के क्षेत्र अलग-अलग रहते हैं। इसलिए दृष्टि भी अलग होती है। दृष्टि अलग होने से व्यवहार भी अलग होता है। व्यवहार आचरण का परिणाम होता है। आचरण संस्कारों की सन्निधि से आता है। वर्षा का संग-साथ आर्द्र करता है। नम्र बनाये रखता है। सूखापन-रूखापन को जन्म देता है। सूखा पेड़ प्रकृति की शोभा नहीं होता है। रूखापन जीवन को असहज बनाता है। जीवन तो सरिता के समान ही अच्छा लगता है। नदी की तरलता और प्रवाह नदी को सौन्दर्यशाली बनाता है। नदी तटों को ख़ुशी बाँटती आगे बढ़ती-बहती जाती है। नदी की यही टेक उसे पयस्विनी बनाती है। नदी का होना इसी अर्थ में है। जीवन का होना मानुष भाव में है। वर्षा का होना परोपकार में है। बूँद मिटकर जगत को जीवन देती है। वर्षा परजन्य है। वर्षा परोपकारी है।

वर्षा में कोई भीगकर ख़ुश होता है। कोई सूखा-खट्ट पड़ा रहता है। कोई तन-मन दोनों से नहाता है। कोई तन-मन दोनों को वर्षा के पास फटकने भी नहीं देता है। कोई वर्षा की प्रतीक्षा करता है। कोई वर्षा से उदासीन रहता है। कोई बादलों को देखकर उछाह मनाता है। कोई काले-काले मेघों से भयभीत होता है। कोई बरसात में काम करते-करते रोज भीगता है। कोई चतुर्मास घर में बैठे-बैठे काट देता है। कोई खेतों में, जंगलों में चार महीने वर्षा के साथ जीता है। कोई कार्यालय में, भवन में, महल में बैठे-बैठे वर्षा बूँदों की शीतलता-गर्माहट को छू भी नहीं पता है। कोई टेकरे पर, पहाड़ पर बने घर में वर्षा के दिनों में बैठकर चैन की वंशी बजाता है। कोई नदी किनारे, नाले किनारे बनी अपनी टापरी में से भीतर घुस आये बारिश के पानी को उलीचता है। कोई झर-झर झरती बरसात में गर्मी को भगाने के लिए तर-बतर नहाता है। कोई सर्दी न हो जाए, इस डर से कोने में दुबका रहता है। कोई जीवन के सारे सरोकार वर्षा में ढूढँता है। कोई वर्षा से जीवन के सरोकार अलग कर जीता है। कोई वर्षा में राष्ट्रहित और विश्वहित के सन्दर्भ खोजता है। कोई राष्ट्रहित और विश्वहित के सन्दर्भ वर्षा में खोजना निरर्थक दिमागी उलझन मानता है। कोई अन्न-जल-दूध का गहरा सम्बन्ध वर्षा से हृदयंगम करता है। कोई दुकान से लायी हुई आटे की थैली और नल के पानी से जिन्दा रहने के अर्थ पाता है। कोई रोटी के स्वाद में वर्षा जल की उपस्थिति पाता है। कोई पाव-भाजी खाकर जैसे-तैसे पेट भरकर आगे बढ़ने में समझदारी समझता है। कोई नील गगन में उमड़ती-घुमड़ती घटाओं के आकार और रंग देखता है। कोई शेयर बाजार की घटाओं में सूचकांकों की रुझान देखता है। कोई वर्षा में भीगते हुए भी

कोई वर्षा की प्रतीक्षा करता है। कोई वर्षा से उदासीन रहता है। कोई बादलों को देखकर उछाह मनाता है। कोई काले-काले मेघों से भयभीत होता है। कोई बरसात में काम करते-करते रोज भीगता है। कोई चतुर्मास घर में बैठे-बैठे काट देता है।

वर्षा की बूँदे तो समान गुण-धर्म वाली होती हैं। पर जब वह कदली में गिरती है, तो कपूर बन जाती है। सीप में गिरती हैं, तो मोती बनती है। सर्प के मुख में गिरकर विष हो जाती हैं।

नद-खड्ड को पार करता हुआ कर्मक्षेत्र पर उपस्थित होता है। कोई वर्षा की आड़ में घर में मज़े में भजिए खाता है। कोई लगातार वर्षा हो रही है, तो दिन में चार बार गरमा-गरम चाय-कॉफ़ी पीता है। कोई वर्षा में दूध न प्राप्त होने के कारण सुबह की चाय भी नहीं पी पाता है। पर वर्षा अन्न-जल प्रदायिनी है।

पावस है तो जल है। जल है तो नदी है। नदी है तो नदी-विवाद है। जल-विवाद है। राष्ट्रों-राज्यों के झगड़े हैं। बाँध हैं। सिचाई है। फसल है। फसल-बीमा है। मण्डी है। भावों के उतार-चढ़ाव हैं। भावों का रोना-धोना हैं। किसान-आन्दोलन है। राष्ट्र की सकारात्मक सोच है। खेती का उन्नयन है। किसानों की उन्नति है। दलालों की छाती पर साँप का लोटना है। मुफ़्तखोरों का पेट दुखना है। अन्न का उचित मोल होना है। चालबाज़ों का बाज़ार ख़त्म हो जाना है। उत्पाद और उपभोक्ता का सीधा संवाद है। उत्पाद की गुणवत्ता की क़ीमत का समझा जाना है। दाने-दाने का मान है। अन्नदाता का सम्मान है। अन्न-धन के भण्डार राष्ट्र की समृद्धि है। कर्म का महत्तव है। कर्म का संदेश मनुष्य मार्ग के लिए अनुकरणीय है। प्रत्येक जीव कर्म करता है। सृष्टि में अकर्मण्यक कोई नहीं है। चींटी भी नहीं। हाथी भी नहीं। जल, नभ, भू, अग्नि, वायु कोई नहीं। सूर्य चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र कोई नहीं। घड़ी, पल, छिन, पहर, रात, दिन, मास, बरस, ऋतु, युग, मन्वन्तर, कल्प कोई नहीं। सब कर्मरत हैं। वर्षा कर्म-प्रेरक नैसर्गिक जल-शक्ति है।

पावस आता है। सावन लाता है। पर्वों-त्योहारों की लड़ी लटक जाती है। रक्षा-बन्धन का त्योहार आता है। सासरवासेण बहिन की आँखें दिन में दस बार उस राह को देखती हैं, जिस राह पर उसका मायका है। गाँव है। शहर है। नगर है। गाँव-शहर-नगर में घर है। माँ है। छोटी बहिन है। घर में छत- सरीखे पिता हैं। ममता है। दुलार है। प्यार है। सावन में उस बहिन के कान भी आँखों की भूमिका में आ जाते हैं। फोन की हर घण्टी पर लगता है, पिताजी का ही फोन होगा। यह उत्कण्ठा जीवन को थकने नहीं देती है। रुकने नहीं देती है। सावन में बहिन-बेटी घर आती हैं। घर, घर लगने लगता है। घर स्वयं में त्योहार हो जाता है। संबंध की डीरी (कोंपल) हरीकच्च, नरमलुच्च और रसमच्च हो जाती है। बरसते सावन में माँ को बेटे की याद आती है। दूर देश में नौकरी पर दो पैसा कमाने गया बेटा राखी पर तो ज़रूर आएगा। एक बरस हो गया उसे देखे हुए। बातपेटी (मोबाईल) में तो उसकी आवाज़ सुनाई देती है। लाड़ले का मुखमण्डल भी दिखता है। पर उसे लाड़ कैसे किया जा सकता है। उसके सिर पर हाथ तो नहीं फेरा जा सकता है। वर्षा में भीजती हुई देह का और नेह में भीजे हुए मन का स्पर्श तो छूकर ही किया जा सकता है। माँ, बहिन, पिता, घर, द्वार सब प्रतीक्षा-रूप हो जाते हैं। बातपेटी बज उठती है। पपीहा बोलता है। 'माँ मैं आ रहा हूँ।' घर संस्कृति की रांगोली माँडने लगता है। माँ दीप जलाती है। बहिने आरती सँजाती हैं। पिता की स्वासों से फूटी शंख-ध्वनि दिशाओं में फैल जाती है। आटो द्वार पर आकर रुकता है। संस्कृति-सदन में कलरव गूँजने लगता है। उत्तर दिशा की बदली पूरब दिशा तक घिर आती है। बूँदों से बरसता मेह नेह के नातों को सींचता है। नन्हा बालक वर्षा के बहते पानी पर अपनी काग़ज़ की नाव छोड़ रहा है।

सुबह से घिरे हैं घने काले बादल... बरस रही रिमझिम उदासी...क्यों मल्हार गाए है!

कविवर कुँवर नारायण की बेगम अख़्तर को समर्पित ये पंक्तियाँ मल्हार से उपजी उदासी से मन को भिगो देती है। बरखा, बारिश, मेघ, वर्षा, मल्हार, घन, बादल जैसे शब्द मानस में उभरते ही इसका सांगीतिक वैभव भी जगमग करने लगता है।

वर्षा गाँव के उस किसान के लिए एक बड़ी आस है जो पहले अपने पसीने से धरती को नहलाता है और फिर बादलों को बुलाता है कि भैया! समय से पधारना। तुम्हारे आने से ही मेरे खेतों में फसल लहलहाएगी, बेटी ब्याही जाएगी, होली-दिवाली मनेगी और कभी ये बावरा मन कुछ गाने को विकल होगा। किसान की यह विकलता उसके संघर्ष और उल्लास दोनों की अनुगूँज है। उसकी इसी मन:स्थिति को जनजीवन से जोड़ते हुए कवियों और संगीतज्ञों ने अपनी रचनाओं को सिरजा होगा। आपाधापी में जीते हुए मन में अब मल्हार का लालित्य तो गुम सा है। नई नस्ल को 'रेन रेन गो अवे' की इबारत ज़्यादा याद है और वह 'येरे येरे पाउसा, तुला देतो पइसा' या 'पाणी बाबो आयो, ककड़ी भुट्टा लायो' को बिसराती जा रही है। इस मंज़र के बीच कम से कम संगीत बिरादरी के साधक तो लगातार मन को मल्हार में तरबतर पाते हैं, महफ़िलों में अपनी आलापचारी और तानों का वितान रचते हुए श्रोता को ऋतुओं की महारानी बरखा की ओर ले ही जाते हैं। कहते हैं- वर्षाकाल साधना का महापर्व है, सो सुरों की साधना करने वाले ऐसे कलावंतों से बतियाने की ज़मीन बनी।

मन भीगे मौसम **मल्हार** के

संजय पटेल

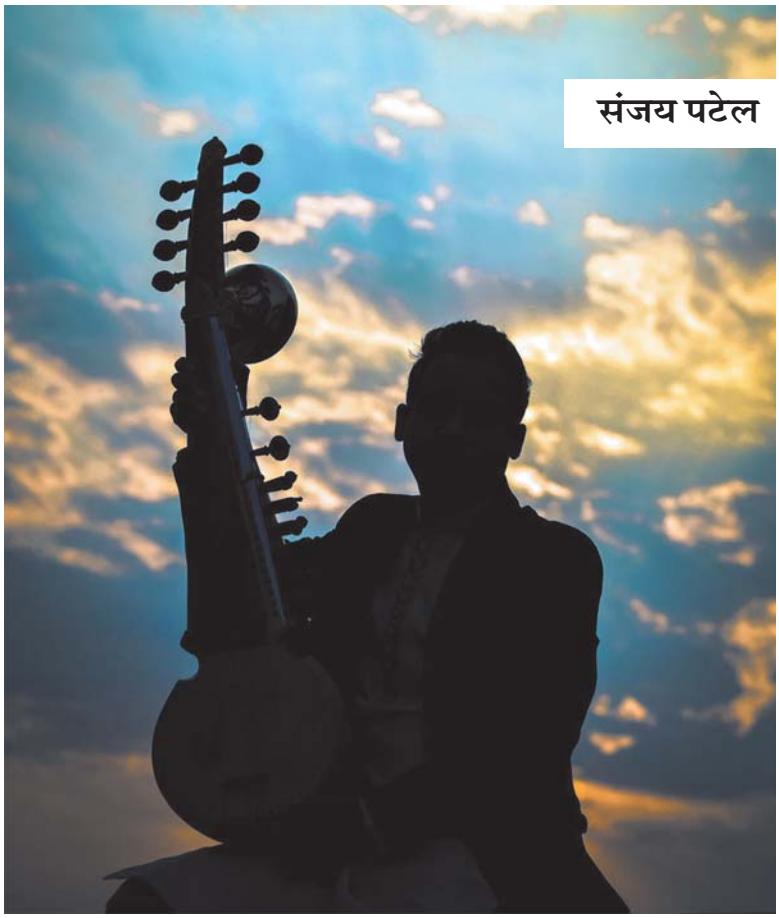

छाया: देबजीत दास

'रंग संवाद' के लिए बातचीत की इस बारादरी में पधारे गोस्वामी गोकुलोत्सव जी महाराज, विदुषी शुभा मुद्गल, विदुषी अश्विनी भिड़े देशपाण्डे, पं. अशित देसाई, पं. संजीव अभ्यंकर और श्रीमती शोभा चौधरी। सबके घराने, शिक्षा-दीक्षा, विरासत और गुरुजन अलग लेकिन एक बात सबमें समान मिली और वह थी वर्षा के रागों, बंदिशों का आनंद और उससे जुड़ी सांगीतिक अनुभूतियाँ। सभी कलावंतों का कहना था कि मल्हार रंग के राग विशिष्टता रखते हैं। संगीत में ग्रीष्म यानी होली और वर्षा यानी मल्हार। राग-रस यहाँ कुछ ऐसा उमड़ता है कि स्मृतियों का आँचल भींज उठता है। भीतर के कपाट आहिस्ता-आहिस्ता खुलने लगते है। नाद की उठती-गिरती लहरों का रोमांच रग-रग में घुलने लगता है।

कंठ से पहले आत्मा को भिगोता है मल्हार

पद्मभूषण गोस्वामी गोकुलोत्सव जी महाराज का नाम और व्यक्तित्व किसी औपचारिक परिचय का मोहताज नहीं है। वे वल्लभाचार्य संम्पदाय जिसे हम वैष्णव सम्प्रदाय के के नाम से परिचित हैं; के पूजनीय आचार्य हैं। इस परम्परा में संगीत का स्थान भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना धार्मिक साहित्य और स्वाध्याय का। हिन्दी, मराठी, राजस्थानी, अंग्रेज़ी, फ़ारसी, उर्दू भाषाओं के साथ वे यूनानी चिकित्सा पद्धति, पखावज वादन और ध्रुपद गायन के ज्ञाता भी हैं। उन्होंने अपने पूज्य पिता गोस्वामी गिरधररायजी से संगीत की आरंभिक शिक्षा लेने के उपरांत पं. मोरेश्वरराव गोलवलकर से ख़याल गायन की तालीम ली है। भेंडी बाज़ार घराने के उस्ताद अमान अली ख़ाँ, उस्ताब अब्दुल वहीद ख़ाँ (बहरे) और उस्ताद अमीर ख़ान के गायन से उनका विशिष्ट अनुराग रहा है। सभी मूर्धन्य गायकों को सुनकर उन्होंने अपनी शैली विकसित की है जिसमें बंदिशों की भव्यता तो है ही मेरूखण्ड गायकी के सुघढ़ कलेवर भी दिखते हैं। एक वाग्गेयकार के रूप में भी उनका बड़ा आदर है और मधुरपिया के नाम से रची उनकी बंदिशें शास्त्रीय संगीत जगत में ख़ासी लोकप्रिय हैं।

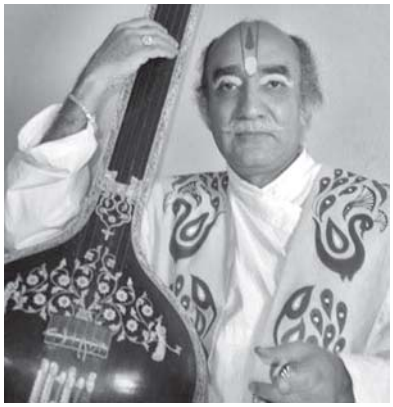

गोस्वामी गोकुलोत्सव

'रंग संवाद' के लिए मल्हार पर आधारित इस संवाद में उनका विचार को जानना एक उपलब्धि है। वे कहते हैं कि मल्हार गायकी वस्तुत: भगवान श्रीकृष्ण और राधा जी के वन-उपवन में विहार करने के दौरान रची गई है। राधा-कृष्ण के झूला झूलने की दृष्यावलियों को वर्षाकाल में निबद्ध किया है। ज़ाहिर है उस समय प्रकृति भी अपने शबाब पर होती है। मूलत: यह नायक-नायिका की मनोहारी छटा का अद्वितीय गान है। वे कहते हैं कि हवेली और शास्त्रीय संगीत को विलग करना दुर्भाग्यपूर्ण है। वह शास्त्र का ही अटूट हिस्सा है। यह एक सुखद तथ्य है कि महाराज जी शास्त्रीय संगीत के वरिष्ठ अध्येता भी हैं। उनके रचे ग्रथों में एक सम्पूर्ण खण्ड मल्हार को समर्पित है। इसमें गहन शोध और परम्परा की विरल व्याख्या की गई है। आचार्य श्री कहते हैं कि हवेली संगीत में गौड़, सोरठ और चरजू की मल्हार भी उस शोध में शामिल है।

वे महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं कि मियाँ की मल्हार का मूल नामकरण रहा है 'गयंद मल्हार'। गयंद यानी गजराज। जिस तरह से वर्षा काल में हाथी झूमता है वही गयंद मल्हार में अभिव्यक्त हुआ है। इसमें कोमल और तीव्र निषाद के बीच धैवत (हाथी का मस्तक) स्वर विराजित है। राग संगीत में कविता के महत्व को प्रतिपादित करते हुए गोकुलोत्सव जी कहते हैं कि यदि रचनाकार मर्मज्ञ हो तो शास्त्र कविता का पदलग्न (अनुगामी) हो जाता है। प्रकृति प्रधान रचनाओं में मल्हार इसलिए विशिष्ट है क्योंकि उसकी सुरावलियाँ गायक के कंठ के पूर्व उसकी आत्मा को भिगो देती है। आचार्य श्री ने बातचीत का समापन करते हुए कहा कि जीवन की आपाधापी में शास्त्रीय संगीत ही है जो व्यथित मन में घुमड़ रहे ग्रीष्म को शीतलता देता है। गोस्वामी गोकुलोत्सव जी से मल्हार रागों पर आधारित उन्हीं की दो अनुपम बंदिशें प्राप्त हुईं-

राग मेघ मल्हार

स्थायी:

घन उमड़-घुमड़ गरज, घटा घिर आई

अंतरा:

चहुँ ओर शोर करत, बरसे घन बूँदनिया

ब्रजरंगपिया हरषत जिया

बरखा ऋतु आई

राग मधुर मल्हार

स्थायी:

जा जा जा रे बदरा

मोह पिया बिन निसदिन

नींद न आवत

ऐसो संदेसा मोरा पिया सो कहियो जात

अंतरा:

'मधुर पिया' मोहे विरह सतावे

टेर पपीहा पियु की सुनावे

निसदिन पिया की याद सतावे

घनन घनन घनन घनन करत

(रचयिता: गोस्वामी गोकुलोत्सव जी)

मन होता है पावस की पहली बूँद को तानपुरे पर थाम लूँ!

मल्हार के इस संवाद में एक सुखद छींटा दिया देश की अग्रणी गायिका विदुषी शुभा मुदगल ने। पं. रामाश्रय झा, विदुषी नैना देवी, पं. वसंत ठकार, प. विनयचंद्र मौदगल्य, प. कुमार गंधर्व और पं. जितेन्द्र अभिषेकी जैसे शिखर कलावंतों का सान्निध्य पाया। शुभा जी की पारिवारिक पृष्ठभूमि शिक्षा और साहित्य से राब्ता रखती है सो ज़ाहिर है उन्होंने अपने गायन में स्वर के साथ शब्द को समान महत्ता दी है। सुखद यह है कि उनके समस्त गुरूजन भी संगीत के साथ ही साहित्य और कविता के गहरे जानकार थे। शायद इसीलिए शुभा जी अपनी संगीत यात्रा में बंदिशों के प्रति अतिरिक्त रूप से सजग नज़र आती है। यह सर्वज्ञात सत्य है कि रामाश्रय जी, नैना देवी, अभिषेकी जी, और कुमार जी ने तो एक बंदिशकार के रूप में भी अप्रतिम काम किया है। कहा कि कहीं भी पहली बरसात की पहली बूँद गिरी और मिट्टी की सौंधी सुगंध उठी तो तानपुरा उठा लेने को मन करता है।

लगता है पावस की झरती पहली बूँद को तानपुरे पर थाम लूँ! गोया मल्हार के स्वागत का बधावा तो ठेठ प्रकृति की ओर से ही आता है। यूँ मल्हार वर्षाकाल में मन, गायन और श्रवण के आनंद को द्विगुणित करता है लेकिन उसकी तैयारी तो सारे बरस चलती रहती है, मौक़ा मिला नहीं कि लगता है मल्हार गाया जाए। लगता है कि मनुष्य के मानस में ईश्वर प्रदत्त प्रोग्रामिंग है जो आपको मल्हार गाने को मुतास्सिर करती है। वे कहती हैं कि भाँति-भाँति के भूगोल में भी मल्हार बहुत आनंदित करता है। समय, परिवेश, बोली-बानी और जीवन में हर चीज़ को तत्काल पाने के आग्रह में तसल्ली गुम हुई है। जैसी बरखा और उससे जुड़े तीज-त्योहार मैंने इलाहाबाद में देखे हैं अब वे कहीं नज़र नहीं आते। उस वक़्त जो बंदिशों या कविताओं में सुनती थी वह अपने आसपास घटता दिखाई देता था फिर वे झूले हों, पनिहारिने हों या तीज पर चूडियाँ बेचने वालियाँ हों या जन्माष्टमी पर मंदिरों की साज-सज्जा। अब सब कुछ रस्मी सा हो चला है। त्योहार

शुभा मुद्गल

इतने सारे हैं कि तीज पर ग्रेटर कैलाश (दिल्ली) पर चले जाइये, पेटीएम कीजिए और हाथों में मेहंदी लगवा आइये। शुभा जी का मानना है कि संगीत, उसका शास्त्र, घराने, परम्परा; सभी कुछ ऋतुओं की महत्ता से वाक़िफ़ थे। यही वजह है कि शास्त्रीय संगीत के प्रति अभी भी एक कौतुक और जिज्ञासा बनी हुई है।

प्रकृति में अनूठा संगीत रचते वन्यजीवों पर कवि मुबारक का अनुपम छंद विदुषी शुभा मुद्गल ने साझा किया; मुलाहिज़ा फ़रमाइये:

बाजत नगारे घन ताल देत नदी नारे
झींगुरन झाँझ भेरी भृंगन बजाई है
कोकिल अलापचारी नील ग्रीव नृत्यकारी
पौन बीन धारी चाटी चातक लगाई है
मणिमाल जुगनू 'मुबारक' तिमिर धार
चौमुख चिराग चारू चपला जराई है
बालम बिदेस नए दुःख को जनम भयो
पावस हमारे लिए बरह बढ़ाई है

कजरी, सावन और झूला महफ़िल लूट लेते हैं

जयपुर-अतरौली घराने का ज़िक्र आते ही विदुषी अश्विनी भिड़े देशपाण्डे का गायन स्मरण हो आता है। अपनी मातुश्री माणिक ताई भिड़े, पं. नारायणराव दातार, प.रत्नाकर पई से गान-शिक्षण हासिल करने के बाद अश्नि जी के संगीत सफर में गान सरस्वगी किशोरी अमोणकर का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। किशोरी ताई के स्वर वैभव और विरासत के साए में पगी अश्विनी जी की गान प्रतिभा को उल्लेखनीय परवाज़ मिली है।

वे कहती हैं- जयपुर- अतरौली में मल्हार रागों का प्राबल्य नहीं है। मज़े की बात है कि मियाँ मल्हार तो गाया ही नहीं जाता। हाँ रामदासी, मीरा और गौड़ मल्हार हमारे घराने में ज़रूर नमूदार हुआ है। गौड़ मल्हार की 'मान न करिए गोरी' की पारम्परिक बंदिश उन्हें ख़ासी सुहाती है। वे कहती हैं- बिहागड़ा और नायकी कान्हड़ा की तरह ये बंदिश भी हवेली संगीत से ही आई हुई प्रतीत होती है। ये नहीं कि मल्हार के सुरों की धजा वाले राग ही वर्षा काल में निखरते हैं; सारंग, केदार और देस की बंदिशें भी सजती-सँवरती नज़र आती हैं जिनमें निश्चित ही बंदिश का कमाल है। सारंग और देस को तो वे मल्हार का जनक राग ही कहती हैं। अश्विनी जी का मानना है कि उप-शास्त्रीय संगीत में बरसात का जलवा ज़्यादा दमदार दिखाई देता है। कजरी, सावन, झूला तो महफ़िल लूट ही लेती हैं। क्या मौसम का असर कलाकार के मिज़ाज पर ही होता है? पूछने पर उनका कहना है कि बिलाशक होता है। मन पर होता है और शरीर पर भी होता है। वे मल्हार जैसे प्रकृति प्रधान राग में कविता के साथ भाव को भी प्रमुख मानती हैं। वह कविता जो नादमय हो, कलाकार और श्रोता दोनों के हृदय के निकट होती है। जैसे एक बंदिश के बोल हैं- ''पिया नहीं आए- जिया घबराए'' बढ़िया बात है लेकिन शब्द को आसरा चाहिए भाव का, एक्सप्रेशन का, स्वर के माधुर्य का। अब इसी बंदिश को देखें, कविता तो एक पंक्ति में हो गई लेकिन भाव? उसमें तो चिंता भी है, ईर्ष्या भी, विरह तो है ही, नाराज़ी भी है और घबराहट भी। ये सारा काम तो आवाज़, रियाज़ और गाने की रिवायत से ही सजेगा! क्या गाते वक़्त भी उमस और बरसात की तरह द्वंद चलता है? अश्विनी जी कहती हैं- यही द्वंद तो गायन की विविधता का आधार है। राग को अख़बार की ख़बर की तरह तो नहीं पढ़ा जाता...।

अश्विनी भिड़ेदेशपाण्डे

कविता और सरगम के सामेले से ही गायक के कंठ से सावन झरता दिखाई देता है।

प्रकृति का अनोखा श्रृंगार

पं. अशित देसाई ने कहा कि मल्हार की भावभूमि पर कई सुगम संगीत रचनाओं को सिरजने का मौक़ा मिला है। वे संगीतकार और गायक हैं। गुजराती सुगम संगीत परिदृश्य में विशिष्ट पहचान रखते हैं। उन्होंने संगीतकार जयदेव के सहयोगी के रूप में काम किया है और रेखांकित करने योग्य तथ्य है कि भारतरत्न पं. रविशंकर के सहायक के रूप उन्हें सर रिचर्ड एडनबरो की फ़िल्म गाँधी में योगदान देने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है। सुगम संगीत में धुन के बराबर हिस्सा होता है शब्द का और अब समय ऐसा है कि वैसे क़लमकार नहीं जिसकी कविता को धुन में बाँधने के लिए कोई अतिरिक्त उपक्रम करना पड़ता हो। अब वे थीम वाले शोज़ भी नहीं जिसमें हम अपनी शर्त पर कविता चुनते थे और संगीत बुनते थे।

वे बताते हैं कि उन्होंने मेघ मल्हार शीर्षक से एक सम्पूर्ण कार्यक्रम किया था जिसका एक गीत याद आ रहा है- 'आज आषाढ़ आयो- मन ना मंदरिया मेघ मल्हार गायो', लेकिन अब ऐसी रचनाओं को सुनने वाले श्रोता नहीं। अब वह शो बुक कर के अपनी प्ले लिस्ट हमें पकड़ाता है और कहता है उसे ये सुनना है। सच बात यह है कि समय के साथ सुगम संगीत की पूरी विधा चाहे गुजराती में हो या हिन्दी में, मराठी में हो या बांग्ला में; विस्मृत होती जा रही है। वैसे भी सुगम संगीत कभी भी पान के गल्ले पर सुनने वाली चीज़ नहीं था। बहरहाल, अशित देसाई कहते हैं कि सुगम संगीत में प्रकृति को श्रृंगारित करने का अपना अलग ही मज़ा है। वह किसी कम्पोज़र के लिए चुनौती भी और आनंद भी।

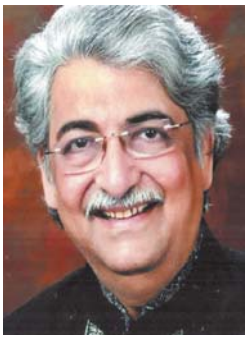
पं. अशित देसाई

सबै कहे दमक-दमक उठी दामिनी

श्रीमती शोभा अभ्यंकर और पं. जसराज के अनन्य शिष्य, मेवाती घराने के प्रतिनिधि गायक लेकिन नवाचार के हामी संजीव अभ्यंकर कहते हैं कि मल्हार बोलते या सुनते ही भरा-भरा आसमान, उमड़-घुमड़ की बरखा या बूँदा-बांदी वाली फुहार याद आती है। बेसाख़्ता किसी तस्वीर की याद करूँ तो सर्वत्र हरियाली का गुमाँ होने लगता है। लगता है, जैसे पूरा परिवेश हरी दूब में तब्दील हो गया है। फिर घर के आसपास पानी के गिरने पर सुनाई देती ध्वनियाँ मुझे वर्षा काल में एक अलहदा अहसास देती है। यह इसलिए भी है कि भारत में शहर दर शहर हमारा रहन-सहन अलग है। किसी के यहाँ टीन का शेड है तो किसी के यहाँ सीमेंट की नालीदार छत, किसी के यहाँ भव्य भवन है; कहीं कवेलू हैं; सभी जगह एक ही आसमान से पानी बरस रहा है लेकिन उसकी ध्वनि जुदा-जुदा है। इस साउण्ड से मन में मल्हार के अलग अलग चित्र बनते हैं। यही पानी विदेश में गिर रहा हो तो आपको एकरसता सुनाई देगी। जैसे एक ही तान को बहुत देर तक किसी गायक ने छेड़ रखा हो। पानी के बरसने की ध्वनि की विविधता जैसे बताती है कि संगीत में सुर तो सात ही हैं, राग शास्त्र भी एक ही लेकिन जब उसे अलग-अलग घराने का गायक गाता है तो उसका विन्यास नई-नई अनुभूति से जोड़ता है।

पं. अभ्यंकर कहते हैं कि बरखा के रागों की बात करूँ तो उसमें मुझे अध्यात्म, प्रेम और संसार के तीन रूप नज़र आते हैं। जिस किसी ने भी राग संगीत के बारे में विचार किया होगा और उसमें भी जब मल्हार का प्रकार रचना शुरू किया तो उसमें आंदोलन को ख़ास तौर पर शामिल किया होगा। क्योंकि इसी ध्वनि से मन में बादल घुमड़ने लगते हैं। यूँ मुझे लगता है कि मल्हार की संरचना कहीं न कहीं लोक संगीत से आई है। मल्हार की एक विशेषता यह है कि वह सारंग की ज़मीन से उपजा है। गोया सारंग ग्रीष्म में दहक रहा स्वर है तो वहीं मल्हार की ओर रुख़ करते ही वह प्रेम की महत्ता को प्रतिपादित करने लगता है। संजीव जी ये भी कहते हैं कि अन्य रागों के मुक़ाबले मल्हार के प्रकारों में स्वराघात ज़्यादा आक्रामक हो जाता है। मल्हार के प्रकारों में कविता

पं. अभ्यंकर

का वैभव कुछ अलहदा ही है। दिल के क़रीब की दो बंदिशों को पं. अभ्यंकर ने ख़ासतौर पर याद किया-

बादर बरसावे, बरसात बहुतेरी आली
निपट अंधियारी भारी, भादो की यामिनी
तामै श्याम वसन विभूषण पहरी श्यामा
श्याम पे सिधारी
मदसंत गजगामिनी
चारू चटकीली छवि
चमक-चमक गाई उठी
सबै कहे दमक-दमक उठी दामिनी

(गौड़ मल्हार/ रचना: पं. जसराज)

घनघोर घटा छाई
राह तकत, अपनो प्रियतम सोए
ललिता अकुलाई
कब आओगे बालम मोरे
बिरहन बिरहा सताई
बेगी चली अधीर ललना
जहाँ प्रीतम सुखदाई

(रामदासी मल्हार/ रचना: पं. संजीव अभ्यंकर)

गिरिजा देवी के गले से मैंने मल्हार झरते देखा है

पं. सी.आर.व्यास और विदुषी गिरिजा देवी की सुशिष्या विदुषी शोभा चौधरी न केवल शास्त्रीय संगीत गायिका हैं बल्कि पंचम निषाद संगीत संस्थान, इन्दौर के ज़रिए नई नस्ल को तालीम देने के नेक काम में भी संलग्न हैं। जब उनसे पूछा कि मल्हार एक कलाकार को अन्य प्राकृतिक प्रधान रंगों से अलग क्यों लगता है तो उन्होंने बड़ी पते की बात कही- मनुष्य मूलतः प्रकृति प्रेमी प्राणी है इसलिए उसे हरियाली, पानी, झरने, नदियाँ, पहाड़, अच्छे लगते हैं। हरियाली आँखों को सुकून देने के साथ मन को भी हराभरा करती है। मल्हार के रागों में आपको वही शांति का भाव मिलता है।

शोभा चौधरी

तकनीकी रूप से देखें तो उसमें स्वरों का विन्यास ऐसा है जैसे सुनने और गाने वाले को कोई रूहानी दौलत मिल गई है। चूँकि मल्हार वर्षा ऋतु में गाया जाता है इसलिए इसका रागांग महत्व भी है। दीगर प्रकृति प्रधान रागों में ऐसी अनुभूति नहीं होती। संगीत और साहित्य दोनों ही मनुष्य के भावों को व्यक्त करने के महत्वपूर्ण माध्यम है। दोनों के समन्वय से अलौकिक सौंदर्य सृष्टि-वृष्टि होती है जिससे मानव मन आनंदित हो उठता है। नई पीढ़ी को आप शास्त्रीय संगीत सिखाती हैं। तब क्या मल्हार के प्रकारों के लिए कोई अतिरिक्त उत्सुकता दिखाई देती है? शोभा जी ने कहा कि अब मनुष्य का जीवन प्रतिस्पर्धा, तनाव और एक विचित्र क़िस्म की दौड़ से घिरा हुआ है। उसमें प्रकृति के लिए उत्साह गुम होता दिखता है। युवाओं को करियर की चिंता है और उनसे कुछ अधिक उम्र के शिष्यों को रोज़गार की। सबसे अधिक जिज्ञासु किशोरवय के शिष्य नज़र आते हैं। उन्हें सुनती हूँ तो लगता है जो मैंने गुरूजनों से सुना-सीखा है उसकी फुहारें इन भावी कलावंतों तक पहुँच रही हैं। चूँकि मैंने अप्पा जी (श्रीमती गिरिजा देवी) के सान्निध्य का सौभाग्य भी पाया है इसलिए कहूँगी कि उनकी गाई उपशास्त्रीय रचनाओं में तो मैंने मल्हार झरते हुए देखा है। वे गा रही होती थीं तो लगता है सामने झूला बँधा हुआ है, सावन की झड़ी लगी हुई है।

शोभा जी ने पं. रामाश्रय झा रचित गौड़ मल्हार की बंदिश सुनाई- ''जा रे तू बदरा दूर/जहाँ मोरे कंथा बसे/कहियो संदेसा काहे, पाती न भेजी/रामरंग बिरहिन जरा जरे।''

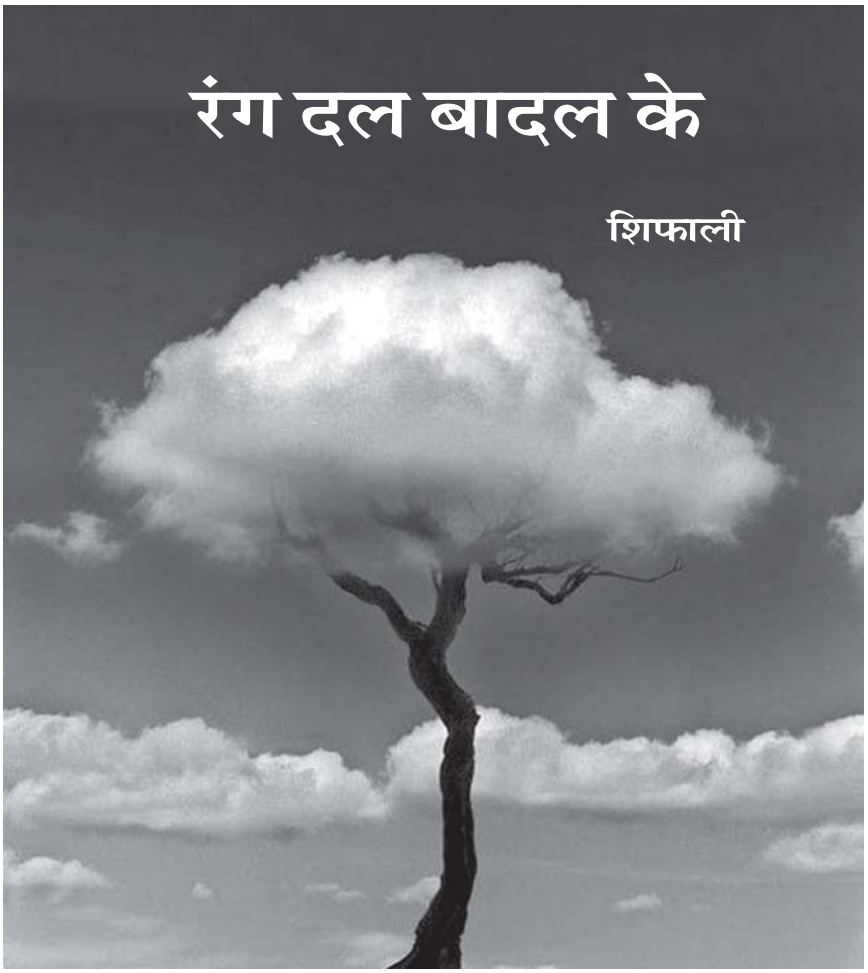

रंग दल बादल के

शिफाली

जिस चौमासे में मयूर पंचम सुर लगाए, भोर और संझा बिना नागा अपनी खुशी का हाल सुनाते हैं। कपड़े बदलती कायनात के इन दिनों में जब सूखे दरख़्त भी फुहारों से मिलने मचल-मचल जाते हैं। जब शायरों के अल्फाज़ में फ़कत क़ुदरत का ख़्याल होता है। जब सुर साधक के कंठ में मेघ मल्हार होता है। तब हाथों में कूची और आँखों में रंग लिए चित्रकार के मन मस्तिष्क पर भी तो उतरता है मानसून.... वॉन गॉग ने जब गिरती हुई बारिश अपने केनवास पर उतारी थी। तब केनवास से पहले क्या उनका मन भी बरखा की फुहारों में भींजा था? चित्रकार के लिए कैसे उत्प्रेरक होती है ये बरसात? कौन सा मोह है ये हरे रंग का जो छोड़ता नहीं क्या बारिश केनवास पर उतरती रुमानियत का ही नाम है। या चित्रकार बरसात के हर बर्ताव को अपनी कला में दर्ज करता है..?

...जैसे निगाह की हद से बाहर तक फैला केनवास है कोई और किसी मासूम ने अनजाने में रंगों की शीशियाँ उंडेल दी हैं। रंग फैले भी हैं तो बड़ी तरतीब से ऊपर के हिस्से में नीला रंग पसरा है। कहीं-कहीं धूसर भी है। तो कहीं, सफ़ेदी यूँ उतरी है कि रुई के फाहे रखे हों जैसे नीचे का पूरा हिस्सा हरे रंग से सराबोर जिस पर कहीं पीले, नारंगी और लाल रंग छिटके पड़े हैं। खिड़की के बाहर देखिए तो सही बिना टिकट का ये तिलिस्म इन दिनों हर रोज़ हो रहा है। कैसा जादू है कि अब्र से गिरती हर बूँद हैरत में डाल रही है। हैरत कि बेरंग बूँदों में कितने रंग समाएँ हैं। हैरत..., कि पहली झड़ी में ही कैसे धरती की दर्द भरी बिवाईयों में कोंपल फूँट आए हैं। हैरत..., कि तपिश से हारी बेज़ार धरती ने फिर शुरू किया है मुस्काना.....हैरत.., कि लंबे झुलसाते दिन फिर मेहरबान होने को आए हैं। तपती हारती धरती का सब्र जब टूटने को आता है। देखो तो कैसा जादू हो जाता है। नीले खुले आसमान पर उतरी बादलों की पहली खेप धरा को मिली ख़ुशी की पाती है। दूर देस से ढाँढस बंधाते लिख भेजा हो जैसे किसी ने कि मन के हरियाने का मौसम बस आने को है।

बारिश भी बदलती है अपना किरदार

वरिष्ठ चित्रकार अशोक भौमिक की निगाह बरसात को फुहार के मलमली दुपट्टे हटा कर देखने का आग्रह करती है। वे कहते हैं– बरसात उम्र के साथ ही नहीं परिवेश के साथ भी अपना बर्ताव बदलती है। समय के निश्चित कालखंड में वर्षा को आना है। लेकिन कहाँ किस रूप में ये तय नहीं है। एक मनुष्य के जीवन में बचपन से लेकर युवा अवस्था और उम्र के अलग–अलग पड़ाव में जैसे बारिश के तजुर्बे बदल जाते हैं। वैसे ही राजस्थान में रह रहा एक शख़्स और चेरापूँजी में रह रहे एक व्यक्ति के बारिश को लेकर अनुभव बिल्कुल अलहदा होंगे। अशोक बताते हैं कि उन्होंने मुंबई जाते हुए खिड़की से वेर्स्टन घाट की पहाड़ियों में बारिश के बर्ताव को दर्ज़ करने की कोशिश की है। इस सीरिज़ को उन्होंने नाम दिया अंडूलेशन। मैंने ये बताया है कि ये पहाड़ियाँ लहरें हैं जो थम गई हैं। वर्षा के पहले और वर्षा के बाद के चित्र हैं। इस श्रृंखला में मैने रेल की ख़िड़की से जिस तरह से वर्षा को महसूस किया दर्ज़ किया है अपने चित्रों में।

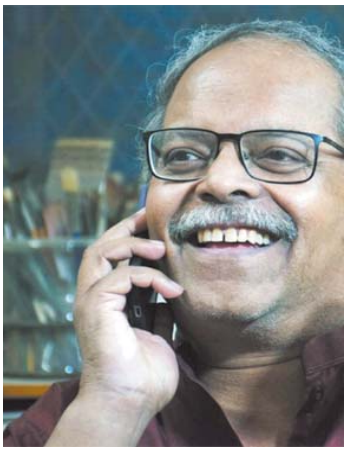

अशोक भौमिक

चित्रकार के चित्रों में केवल बारिश रूमानियत का सबब ना रहे। हक़ीक़त के भी क़रीब आए। फिर टूटे छप्पर में दिखाई दे या किसान की आँखों से होती बारिश में। मेरा ये मानना है कि कला को धरातल के एकदम समीप होना चाहिए। जब बरसात सबके हिस्से बराबर का बर्ताव नहीं लाती, तो कलाकार के लिए तो वो और भी मौक़े देती है। मैं किसान नहीं हूँ जो वर्षा को समझूँगा। मैं कलाकार हूँ जो अनुभव करता हूँ बारिश को। और मैं ये मानता हूँ कि ख़ास चित्रकला के विषय में कलाकार को मूक और दर्शक को बधिर होना चाहिए। जो कहना है केनवास कहेगा। जो सुना जाना है समझा जाना है वो दर्शक की निगाह समझेगी।

वर्षा में सृष्टि पुर्ननवा होती है

शिल्पकार और चित्रकार देवीलाल पाटीदार चित्रकारी में वर्षा के रूपक गढ़ने से पहले वर्षा और धरती के सम्बन्धों की पड़ताल करते हैं। वे बताते हैं कि खेती बाड़ी करने वाले एक किसान और एक शहरी से वर्षा का सम्बन्ध दो अलग–अलग छोर, दो दिशाओं की तरह है। शहरी के लिए जो बारिश दिनचर्या में व्यवधान है। किसान के लिए वो बरसात पूरे साल के लिए धरती की प्यास का इंतज़ाम है। देवीलाल कहते हैं, ये दरअसल पूरी सृष्टि के पुनर्नवा होने का मौसम है। समय का वो एक कालखंड जब पेड़ पौधे जंगल पहाड़ पुनर्नवा होते हैं। और आसानी से कहूँ तो ये साल के वो महीने हैं जब धरती छककर पानी पीती है। देवीलाल कहते हैं बादल मेरे लिए संस्कृति को सनातन बनाए रखने का कल्प है। एक तरह का गर्भधारण कहें इसे कि जिसके साथ पूरी सृष्टि में बिखरे हुए बीज जीवन पाते हैं। अलग ढंग से विस्तार और विकास पाते हैं ये बीज।

बादल मेरे लिए संस्कृति को सनातन बनाए रखने का कल्प है। एक तरह का गर्भधारण कहें इसे कि जिसके साथ पूरी सृष्टि में बिखरे हुए बीज जीवन पाते हैं। अलग ढंग से विस्तार और विकास पाते हैं।

देवीलाल पाटीदार

मेरी कृति में मैने ये बताने का प्रयास किया है कि किसी पेड़ का भी एक स्वप्न होता है। पेड़ को काटकर कुर्सी बना दिए जाने के बाद भी जिजीविषा के साथ वो स्वप्न भी ज़िंदा रहता है और उसे ज़मीन पर उतारने की ख़्वाहिश भी। कैसे कुर्सी के पाए फिर जड़ पकड़ लेते हैं। ये प्रकृति की जिजीविषा है। जिलाए रखने की ज़िद है उसकी। जो जड़ से अलग हो जाने के बाद भी जड़ नहीं छोड़ती। पावस का ये समय इस मंथन का समय भी है कि प्रकृति से हमने जो लिया क्या वो हम लौटा पाएँ हैं? हमारा दायित्व है कि जो हमने प्रकृति से लिया है उसे सूत समेत लौटाएँ।

वर्षा प्रकृति का उल्लास

वरिष्ठ चित्रकार लक्ष्मीनारायण भावसार कालीदास के 'ऋतुसंहार' का जिक्र करते हुए कहते हैं कि यूँ इसमें छः ऋतुओं का वर्णन है। लेकिन इनमें वर्षा ऋतु ही है जो दुखी व्यक्ति को भी सुख की अनुभूति देती है। वे कहते हैं वर्षा ऋतु का वर्णन चित्र में करना अद्‌भुत घटना है। जब बादल भ्रमण करके आते हैं। वर्षा होती है। ये घटना बिजली गिरने या बादल फटने जैसी ही है। लेकिन ये संताप नहीं आनंद देने वाली है। भावसार जी ने भी छः ऋतुओं को अपने चित्रों में उतारा है। वे कहते हैं हाँलाकि पुरस्कार मुझे ग्रीष्म के वर्णन पर मिला। लेकिन आनंद वर्षा ऋतु के कैनवास पर उतारने में ही आया। चित्रकला में सबसे लंबी रेंज ग्रीन कलर की ही है। उसकी वजह ही यही है कि वर्षा ऋतु चित्रकार को ग्रीन की इतनी बड़ी रेंज देती है। और इस ग्रीन रेंज को चित्रकार जितने उल्लासित मन से अभिव्यक्त करता है दर्शक तक भी वह उसी रूप में पहुँचता है। लेकिन वर्षा का एक ही रूप तो नहीं हैं। कहीं वो कहर भी तो बरपाती है। क्या चित्रकार वर्षा के उस रूप को कैनवास पर उतारते हैं? भावसार जी जवाब में कहते हैं, चित्रकार केवल आनंद का सृजन करता है। विभीषिका से हटकर उल्लास का वर्णन और वर्षा प्रकृति का उल्लास है।

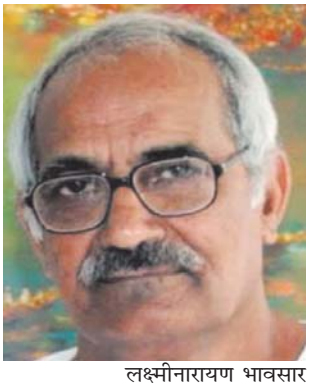
लक्ष्मीनारायण भावसार

धुली-धुली धरती का सिंगार

वरिष्ठ चित्रकार अखिलेश मानसून के इन दिनों को ज़हन में दर्ज़ कर लेते हैं। और फिर मेमोरी बैंक में दर्ज़ इन तस्वीरों को अपनी कल्पनाओं के पंख दिया करते हैं। अखिलेश की निगाह से देखिए तो मानसून के ये दिन पूरे बरस का वो ख़ास वक्त होता है जब धरती से आसमान तक पूरी सृष्टि धुली-धुली दिखाई देती है। ये ताज़े रंगों के लौटने का मौसम होता है। दूसरे किसी मौसम में धरती ऐसे चटख रंगों के साथ दिखाई नहीं देती। अखिलेश कहते हैं चित्रकार के लिए ये मौसम को मन भर के आँखों में रख लेने का वक्त होता है। और फिर पूरे साल किश्तों में केनवास पर उतरता है। मानसून और स्टूडियो गुलज़ार बना रहता है।

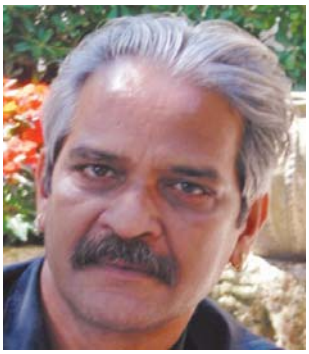
अखिलेश

नीली-नीली हरी कायनात

चित्रकार संजू जैन पूरे साल बेसब्र होकर इन्ही दिनों की बाट जोहती है। उनके लफ़्ज़ों में ये वो दिन होते हैं जब कुल जमा दो रंग बिखर जाते हैं कायनात में। हरा और नीला बाकी जैसे चित्रकार पहले खाका खींच लेने के बाद उनमें रंग भरता है बिल्कुल वैसे ही ये दिन रंग भराई के से दिन होते हैं। बारिश की बूँदों का अमृत दिनों नहीं महीनों की प्यास बुझाता है सृष्टि की। ये वो दिन होते हैं जब-जब हर शै को आप उसके असल रंग के साथ देख सकते हैं। संजू कहती हैं, धूल का रंग पकड़ में आता है क्या कभी? लेकिन देखिए पानी से मिलकर वो भी अपना रंग दिखाती है। वे जोड़ती हैं, केनवास के साथ रंगों के लिए भी ये मौसम एकदम मुफ़ीद होता है। केनवास और रंगों के मुताबिक़ मौसम।

संजू जैन

वर्षा नवजीवन का समय

चित्रकार प्रीता गड़करी वर्षा के इन दिनों को नवजीवन का नाम देती हैं। वे कहती हैं कि ये ही वो समय होता है कि जब कलाकार के जीवन को ही नहीं उसकी कला को भी नए भाव नए रंग मिलते हैं। प्रीता के चित्रों में यूँ भी नीले और हरे की रंग की अधिकता रहती है। वो कहती हैं फिर बारिश के इन दिनों में खिड़की से बाहर देखिए तो अकेले हरे रंग के ही कितने शेड्स दिखाई देते हैं। प्रकृति इस समय नए रंग खिलाती है। वर्षा, वर्ष का वो समय होता है जो पूरी प्रकृति को ही नहीं, कलाकार को भी नई उर्जा से भर देता है।

प्रीता गड़करी

तराने रिमझिम के

अनुराग तिवारी

हमारी संस्कृति बारिश के महीन और सुरमई धागों से बुनी संस्कृति है। पावस की छाया में ही तो फली और फूली संस्कृति है हमारी। मनुष्य वर्षा को विराट की नेमत की तरह देखता रहा है और भाव विभोर होकर विविध कला माध्यमों की सर्जना से वर्षा और प्रकृति के प्रति अपनी कृतज्ञता अर्पित करता रहा है। वर्षा में एक नाद है, उसकी रिमझिम में सुर है, उसके धरती से मिलने की एक लय है। कुल-मिलाकर एक सांगीतिक दृश्य ही तो है बारिश। बारिश को देखना संगीत को भीतर झरते महसूस करना है। उसके सुर में सुर मिलाते हुए अपने गीत गाना वर्षा के भीतर समाए उस नाद ब्रह्म की उपासना करने जैसा ही है। इसलिए नाद ब्रह्म के उपासकों ने अपनी सर्जना में वर्षा को हरहमेश यथोचित स्थान दिया है।

बात सिने संगीत की आती है तो सिने संगीतकारों द्वारा रचित वर्षा के रंग-रंगे गीत अपनी मधुरता, बुनावट, ध्वनि एवं भाव-वैविध्य तथा अपनी संपूर्ण परिकल्पना का प्रभाव लिए कानों में गूँजते रहते हैं। बीसवीं सदी के चौथे दशक के अंत (जबसे सिने संगीत की ठीक-ठीक शुरुआत मानी जा सकती है) से शुरू होकर सिने संगीत के मधुरतम सातवें दशक से गुजरते इक्कीसवीं सदी के पहले दशक तक वर्षा और उससे सम्बंधित मधुर और उल्लेखनीय गीतों का विस्तार तथा प्रभाव लक्ष्य किया जा सकता है।

वर्षा गीतों की महान शृंखला में सबसे पहले याद आता है 1953 में प्रदर्शित 'दो बीघा ज़मीन' का गीत- 'हरियाला सावन ढोल बजाता आया'। इस तराने में सावन बारिश के पट खोल रहा है और किसान बादलों की ताल से ताल मिलाता यह संदेशा सबको सुना रहा है। गीत सुनकर अहसास होता है कि बारिश किसी एक का गीत नहीं बल्कि समूह गान है जिसमें सबके मन का मयूर नाचता है, इसलिए जो जहाँ है वहीं गाने लगता है- ''एक अगन बुझी, एक अगन लगी, मन मगन हुआ, एक लगन लगी।'' सबके सपने हरे धान की तरह बारिश की धुन में लहराने लगते हैं। यह संगीतकार सलिल चौधरी जैसा जीनियस ही हो सकता है जिसने शैलेंद्र के लोकगीत की तरह लिखे बोलों की संगीत निर्मिति देशज धुन बनाकर एक परम्परागत लोकगीत की तरह ही की है। मन्ना दा और लता मंगेशकर जैसे सिद्धहस्त पार्श्व गायकों की आवाज़ का सादा इस्तेमाल, कोरस के साथ मिलकर एक ऐसा समवेत प्रभाव रचता है जो उनकी गायकी को अलग से रेखांकित नहीं होने देता बल्कि गावों के परिदृश्य में गूँजने वाली साधारण आवाज़ों में शामिल नज़र आता है और तब यह गीत सच्चे अर्थों में, वर्षा का एक प्रतिनिधि गीत बनकर हमारे मन मस्तिष्क पर छाता है।

सचमुच वर्षा एक व्यक्तिगत गीत नहीं बल्कि हम सबका प्रिय समूह गान है, एक सर्वजनीन उत्सव है जो वर्ग संघर्ष और जाति-पाती के बंधनों को तोड़ते हुए हमें एक सूत्र में बाँधे रहता है, पर इसी समूह गान के बीच व्यक्ति बारिश की किसी पूर्ववर्ती मधुर स्मृति में भी खोता है। इसी नॉस्टैलजिया से 'ज़िंदगी भर

नहीं भूलेगी वो बरसात की रात' जैसा संगीतकार रोशन के सिग्नेचर स्टाइल से बना और मधुरता में पगा गीत जन्म लेता है। 1960 में प्रदर्शित फ़िल्म 'बरसात की रात' के साहिर लुधियानवी के लिखे इस टाईटल गीत को रोशन ने जिस तरह राग यमन कल्याण के सुरों में पिरोया है वह इस गीत को कालजयी होने के सारे कारण प्रदान कर देता है। कहरवा ताल में निबद्ध इस गीत में सितार, सारंगी तथा तबले का इस्तेमाल प्रमुख रूप से हुआ है, वहीं अंतरे में जलतरंग का ख़ूबसूरत और उस समय के हिसाब से नवाचारी प्रयोग इस गीत को ऑर्केस्ट्रेशन की दृष्टि से संगीत के कुछ अद्‌भुत गीतों में शुमार कर देता है। नायक रेडियो पर गा रहा है, गीत में नायिका से बरसात की एक रात की मुक्तसर मुलाक़ात की स्मृति हिलोरे ले रही है। रेडियो के उस तरफ़ नायिका है, जो जान रही है कि नायक उसके लिए गा रहा है, ख़ुशी के मारे उसके पैर जमीं पर नहीं टिक रहे। अहा, क्या ही सुंदर सिचूएशन और उस पर रचा गया यह अप्रतिम गीत न जाने कितने प्रेमियों को अपनी व्यक्तिगत स्मृति का अभिन्न हिस्सा लगता होगा, इसकी सिर्फ़ कल्पना ही की जा सकती है। भारत भूषण और मधुबाला अभिनीत इस गीत को मोहम्मद रफ़ी ने अपनी आवाज़ से जो रूह बख़्शी है वह इसकी स्तरीयता को अजरता-अमरता के सबसे ऊँचे पायदान पर स्थापित कर हर ख़ास-ओ-आम तक अपनी पहुँच सुनिश्चित कर देती है।

बारिश एक ऐसी शै है जिसमें कोई एक छोटी सी दूर-दूर की अनजानी सी मुलाक़ात भी हमें एक दूसरे के क़रीब अकल्पनीय तरह से ला सकती है क्यूँकि बारिश में भीगते हुए हमारे सारे आवरण उतर जाते हैं, हम अधिक मनुष्य हो जाते हैं और ऐसे में प्रेम का पनपना स्वाभाविक सा हो जाता है।

यदि सिनेमा में बारिश के गीतों की कोई एक रागमाला बनाई जाए तो सावन उस संपूर्ण रागमाला के वादी स्वर की तरह हमारे कानों में रस घोलता और हृदय को दुलारता हुआ पेश आता है। सावन पावस का द्वार है। यह द्वार खुलते ही प्रेमी एक दूसरे को पुकार उठते हैं कि आओ यह वर्षा रूपी प्रेम उत्सव साथ मनाएँ वरना यह अधूरा रह जाएगा। दरअसल बारिश से सम्बंधित ध्वनियों और छवियों की मुख्य तासीर ही कुछ ऐसी है कि जिस तरह पानी लगने से खेत में अन्न उमगता है उसी तरह मन-प्रदेश में प्रेम का उद्दीप्त हो उठना स्वाभाविक जान पड़ता है।

और जिनका प्रेम पहले ही अंकुरित है ऐसे प्रेमी वर्षा में एक-दूसरे के बग़ैर रहने की कल्पना से ही छटपटा उठते हैं और अपनी प्रेम भरी अकुलाहट को गाने लग पड़ते हैं। सावन के कुछ ऐसे ही भाव वर्षा गीतों में बहुत चाव से दर्ज़ हुए हैं और ऐसे गीतों की याद के बावत 1967 में प्रदर्शित और संगीतकार जोड़ी लक्ष्मीकांत प्यारेलाल के मधुर संगीत से सुसज्जित फ़िल्म 'मिलन' का गीत 'सावन का महीना पवन करे सोर' स्वाभाविक ही सबसे पहले हमारे कानों में गूँजने लगता है। राग पहाड़ी पर आधारित इस गीत की निर्मिति में एल.पी. ने कहरवा ताल के ठेके का तबले पर बख़ूबी इस्तेमाल किया है। बाँसुरी, गिटार, वायलिन

पावस और प्रेम गीत

प्रेम के मनोभावों का कोई एक चित्र नहीं बन सकता। उसके अनगिनत मनोभाव हैं और अनगिनत चित्र हमारी कल्पना में बनते हैं। वर्षा के कुछ गीत प्रेम के मनोभावों के चित्र की तरह हमारी नज़रों में तैरे रहते हैं। 'ओ सजना बरखा बहार आयी' 1960 में ही प्रदर्शित फ़िल्म 'परख' का एक ऐसा गीत है जिसे ऊपर कहे की एक बानगी समझा जा सकता है। इस गीत के बहाने एक बार फिर जीनियस सलिल दा का ज़िक्र और उनकी लासानी रचनात्मकता का फ़लक हमारे सामने इस गीत की कर्णप्रियता और शास्त्रीय समृद्धता में हमारे सामने खुलता है। राग खमाज आधारित इस धुन में शैलेंद्र के लिखे देशज बोल अपनी पूरी सार्थकता में व्यक्त होते हैं। दूसरे अंतरे में कल्याण अंग की इज़ाफ़त गीत की सुंदरता में अभूतपूर्व और अकथनीय रूप से वृद्धि कर देती है। स्थायी की पहली पंक्ति के बाद ज्यूँ सितार के सुर छिड़ते हैं, हमारे दिल के तार साथ में झंकृत होते से लगते हैं, रोमों में एक सिहरन दौड़ने लगती है। हमारी आत्मा में बसा जल इस गीत में बरसते जल से संवाद कर एकाकार होने लगता है और हम अपनी आँखों में प्रेमिल चमक अवतरित होते महसूस करते हैं।

सलिल दा के संगीत की एक ख़ास बात इस गीत और उनके कई अन्य प्रतिनिधि गीतों को ध्यान से सुनने पर लक्ष्य की जा सकती है कि वे स्थायी और अंतरे की लय में एक सीमलेस और मनोहारी निरंतरता का बाक़माल प्रयोग करते थे जिससे उनके गानों की एक अमिट और बेनज़ीर स्मृति बनती है और उनके गीत शास्त्रीयता में पगे होने के बावजूद निरंतरता और अद्‌भुत लयात्मकता के इस गुण की वजह से हमारी ज़ुबान पर शब्दशः बने रहते हैं। यह कहना यहाँ समीचीन ही होगा कि हमारी साझा स्मृतियों में यदि पावस की इतनी समृद्ध और सतरंगी छवियाँ न होतीं तो शायद इस गीत जैसा इतना उत्कृष्ट सृजन सम्भव नहीं हो पाता।

आदि वाद्य यंत्रों का प्रमुखता से इस्तेमाल इसकी मधुरता को सुंदरता से पुष्ट करता है। इस गीत के बारे में यह भी कहना ग़लत नहीं होगा कि मुकेश और लता के गाए युगल गीतों में यह गीत, गायकी और अदायगी की उत्कृष्टता के लिहाज़ से सबसे अव्वल दर्जे में बग़ैर किसी संशय के शुमार किया जा सकता है। आनंद बक्शी ने भी इस गीत को देशज शब्दों से इस अंदाज़ में सजाया है कि सावन का रूपक नायक नायिका के बीच अंदर अंदर उपजते प्रेम के मर्म को पूरी कोमलता और ऊष्मा के साथ व्यक्त कर पाता है।

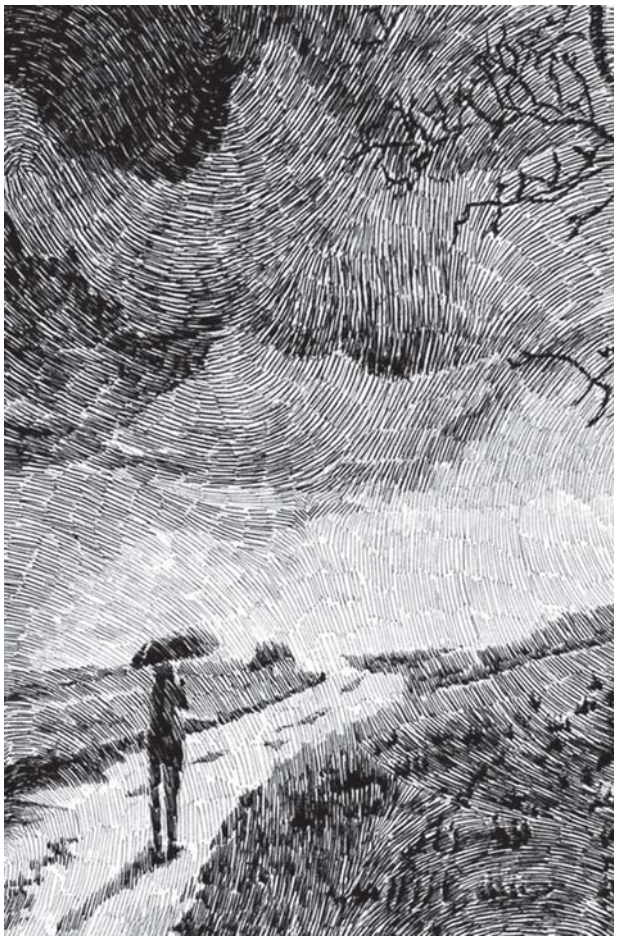

सिने संगीत में सावन के गीतों में कुछ अन्य महत्वपूर्ण, उल्लेखनीय और राग आधारित सुरीले गीतों का ज़िक्र इस ज़रूरी चर्चा के क्रम में आवश्यक है जिनमें 'गरजत बरसत सावन आयो रे' (फ़िल्म- बरसात की रात, संगीतकार- रोशन, राग- गौड़ मल्हार), 'अबके सजन सावन में' (चुपके-चुपके, आर.डी. बर्मन), सावन के झूले पड़े' (जुर्माना, आर.डी.), अबके न सावन बरसे (किनारा, आर.डी.), 'कुछ कहता है ये सावन' (मेरा गाँव मेरा देश, एल.पी.), 'झिलमिल सितारों का आँगन होगा' (जीवन- मृत्यु, एल.पी) 'हाय-हाय ये मजबूरी' (रोटी कपड़ा और मकान, एल.पी.), 'तुम्हें गीतों में ढालूँगा' (सावन को आने दो, राजकमल), 'पल भर में ये क्या हो गया' (स्वामी, राजेश रोशन), 'ओ मेरे सजन बरसात में आ' (पेंटर बाबू, उत्तम-जगदीश), 'लगी आज सावन की' (चाँदनी, शिव-हरी) आदि का नामोल्लेख प्रमुखता से किया जा सकता है। पर सावन के शब्द और दृश्य दोनों के उल्लेख का एक और ऐसा अद्भुत गीत अनायास ही ज़हन में कौंधता है या कहें कि ज़हन में बना ही रहता है जो सावन के गीतों की शृंखला की रसधारा में एक प्रतिनिधि रस की तरह समादृत है और वह है 1979 में प्रदर्शित 'मंज़िल' का गीत 'रिमझिम गिरे सावन'। इस गीत के किशोर कुमार तथा लता मंगेशकर द्वारा गाए दोनों वर्जंस अपनी मधुरता में एक दूसरे से कम नहीं बैठते, पर किन्ही अर्थों में किशोर कुमार वाला वर्ज़न अधिक लोकप्रिय माना जा सकता है। यदि लता जी द्वारा गाए वर्ज़न की बात की जाए तो यह गीत अपनी अद्भुत लयात्मकता, स्तरीय छायांकन और सबसे ज़्यादा लता जी की मधुरता की पराकाष्ठा को छूती आवाज़ और शोख़ अदायगी की वजह से एक अलग तरह से हमें भिगोता है। योगेश द्वारा लिखित इस गीत को पंचम ने राग पीलू पर आधारित जिस कौशल के साथ पाश्चात्य शैली के ऑर्कस्ट्रेशन में प्रवाहमान किया है वह इस प्रचलित बात की ही तस्दीक़ करता है कि पंचम अपने समय से कहीं आगे के संगीतकार थे। मुंबई जिस बारिश के लिए एक अलग प्रसिद्धि रखता है उसके दृश्य इस गाने में जिस ख़ूबी के साथ फ़िल्माए गए हैं वे इस गीत को सिने संगीत में बारिश के दृश्यांकन की दृष्टि से भी एक दुर्लभ और अद्वितीय गीत की श्रेणी में सुस्थापित करते हैं।

सिने गीतों में वर्षा के दृश्यों के इसी तरह के उत्कृष्ट छायांकन का ज़िक्र जब निकलता है तो 1955 में प्रदर्शित, राज कपूर द्वारा निर्देशित और शंकर जयकिशन द्वारा संगीतबद्ध 'श्री 420' का 'प्यार हुआ इकरार हुआ' हमारी आँखों में रहने वाले किसी सुंदर और पूरी तरह याद रह जाने वाले सपने की तरह हमारे सामने जीवंत हो उठता है। राज कपूर और नरगिस द्वारा अभिनीत इस गीत के बारे में विश्वसनीयता के साथ यह कहा जा सकता है कि इस गीत के माध्यम से हिंदी सिनेमा और गीत फ़िल्मांकन की सबसे प्रतिष्ठित और यादगार छवियाँ गढ़ी गयीं। वर्षा का जादू इस तरह सर चढ़कर बोलता है कि हमारे मन के सारे संशय धुल-धुलकर अलग होते जाते हैं, हमारे हृदय का प्रेम-जल मन के बाँध को तोड़कर बरसती बारिश के साथ एकमेक हो जाता है, सारा डर सड़कों में बहते पानी की तरह बह जाता है। कुछ इसी तरह के भावों को यह गीत पूरी

अविस्मरणीयता के साथ दर्ज करता है और ऐतिहासिकता का रुतबा पाता है। इस तरह के गीतों की अन्य बानगी के तौर पर संगीतकार मदन मोहन द्वारा रचित 'तुम जो मिल गए हो' (हँसते ज़ख़्म) और कल्याणजी-आनंदजी द्वारा संगीतबद्ध 'डम-डम डिगा-डिगा' (छलिया) को भी अपनी अलहदा बनक की वजह से शिद्दत के साथ याद किया जा सकता है।

वर्षा का उत्सव हो और बादल की बात न हो, ऐसा होना असंगत ही जान पड़ेगा। मेघ ही इस उत्सव के असली आयोजक हैं और इनके गर्जन-तर्जन की ध्वनियों से ही बारिश का संदेशा पूर्णरूपेण हम तक पहुँचता है। और यह लाज़मी ही था कि इन ध्वनियों को भी सिने संगीत में मधुर प्रतिष्ठा से रेखांकित करने की क़वायद सिने जगत के गुणी संगीतकार पूरी कलात्मक सर्जना के साथ करते रहे हैं। बादल और उसके पर्यायवाची शब्दों से प्राण प्रतिष्ठित ऐसी ही कुछ सुमधुर, स्तरीय और राग आधारित सर्जनाओं में हम संगीतकार राजकमल द्वारा राग मेघ मल्हार में संगीतबद्ध 'कहाँ से आए बदरा' (चश्मे-बद्दूर), पंचम दा रचित बादल यूँ गरजता है (बेताब), एल.पी. रचित 'ओ घटा साँवरी' (अभिनेत्री), जयदेव द्वारा संगीतबद्ध 'ये नीर कहाँ से बरसे है' (प्रेम-पर्वत), एल. पी. रचित 'मेघा रे मेघा रे' (प्यासा सावन), बप्पी लाहिरी द्वारा संगीतबद्ध 'बदरा रे बरसो रे' (फ़र्स्ट लव लेटर), उत्तम-जगदीश द्वारा रचित 'घटा छा गयी है' (वारिस), शिव-हरी द्वारा रचित 'मेघा रे मेघा' (लम्हे) और ए. आर. रहमान द्वारा संगीत निर्देशित 'घनन घनन घिर घिर आए बदरा' (लगान) तथा 'बरसो रे मेघा मेघा' (गुरू) आदि को इनके उत्कृष्ट, प्रयोगवादी और नवाचारी रचनाकर्म की वजह से बहुत आदर-भाव के साथ याद कर सकते हैं और करते भी हैं।

पर इन सबके बीच एक ऐसा गीत भी रचा गया जो रचे जाने के पचास से भी अधिक वर्षों बाद भी ऊपर संदर्भित गीतों के एक प्रतिनिधि और उससे इतर भारतीय सिने संगीत इतिहास की एक अनुपम कर्णप्रिय कृतियों की एक प्रमुख बानगी की तरह समादृत है, वह है 1971 में प्रदर्शित फ़िल्म शर्मीली का बर्मन दादा (एस.डी. बर्मन) द्वारा संगीतबद्ध और नीरज द्वारा कलमबद्ध गीत 'मेघा छाए आधी रात'। काफ़ी थाट के धनश्री अंग के एक सुंदर राग 'पटदीप' में निबद्ध इस गीत को लता मंगेशकर ने अपनी कंठ-माधुरी से इस तरह प्राणित किया है कि इसका असर श्रोताओं के मन में चिर उपस्थित रहा आता है। गाने की शुरुआत और इंटर्लूड्ज़ में पाश्चात्य क़िस्म के संगीत में इलेक्ट्रिक गिटार, अकॉर्डीयन, कांगो आदि वाद्यों के इस्तेमाल तथा राग पटदीप वाले शास्त्रीय हिस्से में सितार, वायलिन, बाँसुरी और तबले पर बजती रूपक ताल के तानेबाने से बुनी इस धुन में बर्मन दा भावनिर्मिति का ऐसा ध्वन्यात्मक प्रभाव रचते हैं जो नायिका के विषाद का एक दम सटीक चित्र खींचता है और उसकी निराशा का मर्म एक अद्भुत सौंदर्य के साथ अभिव्यक्ति पाता है।

कहीं सारा गाँव बारिश का स्वागत गीत गाता है, कहीं प्रेमियों के साथ भीगने के दृश्य हैं, कहीं नायक रेडियो पर नायिका के साथ भीगे लम्हों का गीत गा रहा है, कहीं नायिका अपने घर में तनहा है और बारिश के बहाने अपने प्रेम को बरबस ही पुकार रही है। कहीं नायक तथा नायिका दोनों साथ हैं, बाहर बारिश है, वे किसी और छाँव हैं और बातों बातों में नायिका गा उठती है' बोले रे पपीहरा'।

बारिश की ख़ासियत ये है कि वह हमें शरीर ही नहीं बल्कि मन के कोने-कोने तक भिगोती है। वर्षा काल में भीगना हमारे मन में एक स्थायी भाव की तरह बना रहता है। भीगने के इस भाव, शब्दों और दृश्यों को भी सिने संगीतकारों ने अपनी उच्च रचनाशीलता का परिचय देते हुए सुरीले संगीत में परिवर्तित किया है। कुछ ऐसे ही बेहतरीन और यादगार गीतों की स्तरीय बानगी के बतौर एस.डी. बर्मन रचित 'एक लड़की भीगी भागी सी' (चलती का नाम गाड़ी), पंचम दा द्वारा संगीतबद्ध 'भीगी भीगी रातों में' (अजनबी), बप्पी लाहिरी द्वारा संगीतबद्ध ' भीगा भीगा मौसम' (सुराग), ए. आर. रहमान निर्मित 'भीगी भीगी भीगी जादू भरी' (तक्षक) आदि कर्णप्रिय गीतों को सुनकर हम इनमें शामिल भीगने के भाव को अपने भीगने की स्मृतियों और आकाँक्षा से एकाकार होते महसूसते हैं तो यह इनके रचयिता संगीतकारों की सफलता ही कही जा सकती है।

कहीं सारा गाँव बारिश का स्वागत गीत गाता है, कहीं प्रेमियों के साथ भीगने के दृश्य हैं, कहीं नायक रेडियो पर नायिका के साथ भीगे लम्हों का गीत गा रहा है, कहीं नायिका अपने घर में तनहा है और बारिश के बहाने अपने प्रेम को बरबस ही पुकार रही है। कहीं नायक और नायिका दोनों साथ हैं, बाहर

बारिश है, वे किसी छाँव हैं और बातों-बातों में नायिका गा उठती है ' बोले रे पपीहरा'। यह गीत सिने संगीत में वर्षा के गीतों में अपना एक अलग स्थान रखता है। 1971 में प्रदर्शित फ़िल्म गुड्डी के इस गीत का संगीत भारतीय सिने इतिहास के एक अद्वितीय संगीतकार वसंत देसाई ने दिया जिन्होंने शास्त्रीय राग आधारित कई अमर-अजर गीतों की रचना कर सिने संगीत को समृद्ध किया है। 'बोले रे पपीहरा' को वसंत देसाई ने बारिश के ही सबसे प्रचलित रागों में एक 'मियाँ मल्हार' में निबद्ध कर बनाया और इस गाने के लिए कर्नाटिक और भारतीय शास्त्रीय दोनों संगीतों में निपुण गायिका वाणी जयराम का चुनाव करते हुए वसंत देसाई ने गीत के माध्यम से वर्षा गीतों के उत्कृष्ट रचनाकर्म का एक स्वर्णिम अध्याय रचा। शास्त्रीयता के रस में पगी और ऊँचे सुरों पर भी सुगठित स्थायित्व और मधुरता के साथ वाणी जयराम की बिल्कुल अलग किस्म की आवाज़ और सधी अदायगी इस शास्त्रीय धुन को स्तरीयता, स्मरणीयता और इसके साथ लोकप्रियता- तीनों मानदंडों पर बराबरी से उच्च पायदान अर्जित कराने में सक्षम करती है।

हमारा भोलापन, हमारी मासूमियत, हमारा निरापद खिलन्दड़पन ज़मीन पर टकराकर उछलती बूँदों की तरह उछाले लेने लगता है। 'अहा रिमझिम के ये प्यारे प्यारे' (उसने कहा था, सलिल चौधरी), 'सोना करे झिलमिल झिलमिल' (पहेली, रवींद्र जैन), 'बरखा रानी ज़रा जम के बरसो' (सबक, ऊषा खन्ना) जैसे गीतों का सृजन वर्षा के गीतों के वैविध्य को ऊर्जित और ऊष्मित करता रहा है।

वर्षा जीवन की अल्हड़ता का भी उत्सव है जिसे हम बारिश को ही हाज़िर-नाज़िर मानकर बारिश के ही साथ मनाते हैं। हमारा भोलापन, हमारी मासूमियत, हमारा निरापद खिलन्दड़पन ज़मीन पर टकराकर उछलती बूँदों की तरह उछाले लेने लगता है। यह देखना और सुनना कितना सुखद है कि इन भावों के मद्दे-नज़र भी हमारा सिने संगीत समृद्ध और परिपूर्ण रहा है और 'अहा रिमझिम के ये प्यारे प्यारे' (उसने कहा था, सलिल चौधरी), 'सोना करे झिलमिल झिलमिल' (पहेली, रविंद्र जैन), 'बरखा रानी ज़रा जम के बरसो' (सबक, ऊषा खन्ना), 'घोड़े जैसी चाल हाथी जैसी दुम' (दिल तो पागल है, उत्तम सिंह) जैसे गीतों का सृजन वर्षा के गीतों के वैविध्य को ऊर्जित और ऊष्मित करता रहा है।

यदि विगत 30 वर्षों में बने वर्षा के सबसे मेलोडियस गीत की चर्चा की जाए तो 1994 में प्रदर्शित '1942 अ लव स्टोरी' का पंचम द्वारा संगीतबद्ध गीत 'रिमझिम-रिमझिम, रुमझुम-रुमझुम' हमारे दिलों में सितार बजने और घर की छतों पर जलतरंग बजने की सी सांगीतिक स्मृतियाँ लिए दस्तक देता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे अकेले पंचम दा ने वर्षा संदर्भित अप्रतिम गीतों को रचने का ज़िम्मा ले रखा हो। उनके ऐसे अधिकतर गीतों में गुलज़ार की क़लम का जादू भी है। ऐसे गीतों की सुंदर याद के तौर पर हम 'छोटी सी कहानी से' (इजाज़त) और 'दो नैना इक कहानी' (मासूम) को अपने बहुत क़रीब पाते हैं।

बारिश केवल एक उत्सव ही नहीं है हमारी ज़रूरतों के जल से भरी एक पवित्र उपस्थिति भी है जो पूरी पावस ऋतु में धीरे धीरे रिसकर-रीतकर एक क्रमबद्ध तरीके से हमारे ज़ायके में शामिल होती रही है। इसलिए पानी पुरातन प्रार्थनाओं का इष्ट रहा है कि हमें भरपूर आकाशीय जल मिलता रहे और यह सभ्यता धन-धान्य से पूरमपूर बनी रहे। वर्षा मेलजोल की एक कड़ी है, वह बरसते वक़्त हममें कोई फ़र्क नहीं देखती और हम भी अल्ला हो या राम, सारे ईश्वरों से फ़िल्मी गीतों में भी माँगते हैं कि 'अल्ला मेघ दे, पानी दे, छाया दे रे तू, रामा मेघ दे' (गाइड, एस.डी. बर्मन)। एक ऐसी ही प्रार्थना कल्याण जी आनंद जी के सांगीतिक रचाव और गुलज़ार के शब्दों में फ़िल्म 'पलकों की छाँव में' के एक गीत में सुनाई देती है कि 'अल्ला मेघ दे, पानी दे, पानी दे, गुड़धानी दे।'

बारिश ने सिने संगीत को कितना समृद्ध किया है इस बात का अंदाज़ा किन्ही अर्थों में आलेख में प्रस्तुत और संदर्भित गीतों के माध्यम से लगाया जा सकता है। यदि सिने संगीत से बारिश के गीतों, स्वरों, भावों, दृश्यों और रंगों को निकाल दिया जाए तो उसकी आत्मा का एक बहुत बड़ा हिस्सा खोता रहेगा। सुख-दुःख, उत्सव, प्रेम, शिकायत, विरह, मिलन, आशा- निराशा, विषाद, उल्लास जैसे कितने ही भाव और दृश्य हैं जिनकी कड़ियाँ सिने संगीत में, वर्षा की अविरत धारा से जुड़ती हैं।

ऐसे अहोभाव से भरकर चित्रपट का संगीत यह पुकार लगाता है- 'पानी रे पानी तेरा रंग कैसा, जिसमें मिला दो लगे उस जैसा'।

स्वरांगी साने

जितना आसान यह लिखना है, उतना आसान उसे बजाना नहीं है। जादूगर जैसे जादू की छड़ी से सम्मोहन पैदा करता है, वैसा ही इसे अच्छा बजाने वाला लकड़ी की दो छड़ियों के सहारे प्यालों से मोहक स्वर लहरियाँ निकालता है और आप बरबस 'वाह' कह उठते हैं। 'ढोल पीटने' के लिए जैसे 'डंके की चोट' पर ज़ोर-ज़ोर से प्रहार किया जाता है उसके ठीक विपरीत है यह तुमुल नाद, जिसे बाँस की खपच्चियों को लेकर बड़े हलके से बजाना होता है ताकि जैसे कि इसके नाम से स्पष्ट है जल की तरंग इस तरह हौले से उठे जैसे मंदिर की छोटी घंटियाँ नाद कर रही हों।

साज़

बारिश की हल्की-हल्की बूँदें जब अपनी गमक के साथ तेज़ बौछारों में और फिर लगातार लगने वाली झड़ी में बदल जाए तो मन उदासी से उल्लास तक हिलोर लेने लगता है। चातक की तरह स्वाति नक्षत्र की एक बूँद की आस और उम्र भर की प्यास का लावण्य यदि चीनी मिट्टी की हर कटोरी को चातक बना दे और उसमें संचित होने वाला जल, सुर बिखेरने लगे तो वह संगीत चातक, मोर, पपीहा, कोयल जैसे जाने कितने अनहद नादों के सुरों से लबरेज हो जाता है। चीनी मिट्टी की कटोरी में निश्चित सीमा तक भरा पानी, दो छड़ियों के धीमे आघात से बज उठता है तो वह जलतरंग हो जाता है।

इसे बजाना आसान नहीं होने से इसे बजाने वाले बहुत कम हैं। हर दौर में लगता है कि यह दुर्लभ वाद्य लुप्त हो जाएगा लेकिन संजीवनी की तरह यह जी उठता है तो उसकी वजह इसमें बसा वह पानी है, जिसके लिए कहा जाता है कि जल है तो जीवन है। जल ख़तरे में होगा तो जीवन ख़तरे में होगा या कहें सुमधुर जलतरंग भी ख़तरे में पड़ सकता है। बहरहाल जल संकट के व्यापक विषय की क्लिष्टता जलतरंग में नहीं है। यह वाद्य तो पानी की तरह सरल है, तरल है, मधुर है। महर्षि वात्स्यायन समय से यह साज़ अस्तित्व में रहा है। पानी से भरे संगीतमय गिलासों का वर्णन वात्स्यायन ने कामसूत्र में किया था। जलतरंग का विकास चौथी से छठी शताब्दी के बीच माना जाता है। 'संगीत पारिजात' में इसका उल्लेख है। मध्यकाल में जलतरंग को जल यंत्र भी कहा गया और कृष्ण पंथ के अष्टछाप कवियों ने इसका प्रयोग किया था। तब भी अलग-अलग आकार के प्याले

काँसे या चीनी मिट्टी के बने होते थे। 'संगीत सार' ग्रंथ में 22 और 15 प्यालों के जलतरंग का विस्तृत वर्णन किया गया है। पानी की लहरों की तरह कभी वेगवान तो कभी एकदम धीमे इसका आवेग भी कम-ज़्यादा होता रहा है। फ़िल्मी दुनिया ने इस वाद्य को इतना अपना-सा किया कि गीत 'आएगा आने वाला' (महल-1949) के दो अंतरों के बीच बजने वाला जलतरंग संगीतकार खेमचंद प्रकाश की याद दिला जाता है। उन्होंने फ़िल्म 'ज़िद्दी' (1948) में भी 'चंदा रे, जा रे जारे...' में जलतरंग का प्रयोग किया था। सरस्वती देवी ने 'जवानी की हवा' फ़िल्म में संगीत दिया था तब नजमुल हुसैन, देविका रानी और चंद्रप्रभा से उन्होंने गीत गवाया था- 'सखि री मोहे प्रेम का सार बता दे', जिसमें तबला, सारंगी, सितार के साथ जलतरंग का भी उपयोग किया गया था। संगीतकार नौशाद ने ढोलक, तबला, बाँसुरी, शहनाई, जलतरंग, सितार को अपने गीतों में बख़ूबी स्थान दिया है।

जलतरंग मतलब 'पानी में लहर'। भारतीय उपमहाद्वीप का यह अपने ढँग का अनूठा वाद्य है। इसे दुनिया के प्राचीनतम वाद्यों में से एक माना जाता है। इस पारंपरिक वाद्य यंत्र का प्रयोग भारतीय शास्त्रीय संगीत में किया जाता है। कुछ विद्वानों का मानना है कि प्राचीन काल में ये भारत की पूर्वी सीमा के आसपास नियमित बजाया जाता था। चीनी मिट्टी की प्यालियों में पानी भरकर, बाँस की दो छड़ियों से सुरों को साधा जाता है। पहले जब चीनी मिट्टी के बाउल उपलब्ध नहीं थे तब धातु की कटोरियों का प्रयोग किया जाता था। जलतरंग की विशेषता है कि यह है तो घन वाद्य लेकिन स्वर वाद्य के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। जलतरंग वादन के लिए अच्छे क़िस्म के अलग-अलग स्वरों के प्यालों का चुनाव कर उसमें पानी की मात्रा को घटा-बढ़ाकर एक सप्तक के 12 स्वरों में मिलाना पड़ता है। इस पर बजने वाली धुनें और भारतीय शास्त्रीय संगीत के राग मेघ, भैरव, कामोद, मालकौंस, मधुवंती, हंसध्वनि, मुल्तानी, बिहाग, पुरिया धनश्री, पुरिया कल्याण, कलावती कल्याण, दरबारी, किरवानी या राग भूपाली हौले-हौले उमंग जगाते हुए आनंद से आध्यात्म की ओर ले जाते हैं। पुणे के पं. मिलिंद तुलणकर ख़ास बातचीत में बताते हैं कि यह बेसिक वाद्य नहीं है, मतलब जिसे पहले से रागदारी की जानकारी होगी, वही इसे बजा सकता है। अच्छे क़िस्म के अलग-अलग स्वरों के प्यालों का चयन कर लेने भर से बात नहीं बनती, उसमें पानी की मात्रा कम-ज़्यादा करते हुए उन्हें ट्यून भी करना पड़ता है। एक सप्तक में सात शुद्ध, चार कोमल और एक तीव्र स्वर प्रयुक्त होता है। रागों के अनुसार प्यालों की संख्या कम हो सकती है, जैसे एक सप्तक कम या ज़्यादा कर लिया। बड़ा प्याला बाईं ओर तथा फिर उतरते क्रम में दाहिनी ओर चंद्राकार सजाया जाता है, आम तौर पर 24 प्यालों का जलतरंग सभी रागों के लिए पर्याप्त होता है। निचले सप्तक के लिए बड़े प्याले और उच्च सप्तक के प्याले छोटे होते हैं। पानी की मात्रा इसकी पिच को निर्धारित करती है। कोमल स्वरों के लिए पानी कम लगता है और जब हाफ़ नोट बढ़ाना होता है तो पानी बढ़ा दिया जाता है। प्यालों में अधिक पानी डालने पर स्वर नीचा और कम कर देने पर स्वर ऊँचा हो जाता है। बारिश के मौसम में बादलों का असर अन्य वाद्यों को बैठा देता है, जिन्हें फिर कसना-चढ़ाना पड़ता है। जलतरंग के साथ यह दिक्कत नहीं होती क्योंकि बाहर बरसने वाला पानी ही उसके भीतर होता है इसलिए बाह्य प्रभाव से यह वाद्य प्रभावित नहीं होता। लेकिन जो इसका रस है, सार है, भीतरी आल्हाद है वह पानी की शुद्धता पर ही टिके हैं। पानी ही दूषित हो तो जलतरंग की ध्वनि भी दूषित हो जाती है, मिश्रित हो जाती है, बैठ जाती है। जैसे यदि पानी में क्षार तत्व ज़्यादा हुआ तो प्यालियों पर वह जमा होने लगता है और उसका स्वर गड़बड़ा जाता है। पानी का क्षार केवल बीस मिनट में वाद्य की आवाज़ को बंद कर देता है। तमाम मिनरल्स वाटर भी सतह पर बैठ जाने से सुरों को बिगाड़ देते हैं इसलिए कई बार डिस्टिल वाटर का इस्तेमाल करना पड़ता है।

> जलतरंग हीलिंग का भी काम करता है। इसके ज़रिये संगीत चिकित्सा करते हुए वे विश्व के कई देशों के दो सौ से अधिक शहरों में तीन हज़ार से अधिक लोगों को म्यूज़िक थैरेपी दे चुके हैं। पिछले लगभग 34 सालों से दुनिया के लगभग 21 देशों में प्रस्तुति दे चुके मिलिंद कहते हैं- पानी ही इसके लिए अमृत है और पानी ही चुनौती।

बारह-तेरह वर्ष की आयु से जलतरंग बजाने वाले पं. मिलिंद कहते हैं सातारा में नानाजी शंकर विष्णु कान्हेरे से जलतरंग सीखना शुरू किया था तब उन्होंने कहा था कि इसे बजाने वाले बहुत कम हैं, इसे बजाते रहना। जलतरंग के रेडियो ऑडिशन को उत्तीर्ण कर 27 साल की आयु में वे पुणे आए और तय कर लिया कि नौकरी नहीं करेंगे। नानाजी की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए वे आज भी उन प्यालियों का प्रयोग

करते हैं जिनसे नानाजी बजाते थे, जो लगभग 85 साल पुरानी हो गई हैं। जलतरंग हीलिंग का भी काम करता है, इसके ज़रिये संगीत चिकित्सा करते हुए वे विश्व के कई देशों के दो सौ से अधिक शहरों में तीन हज़ार से अधिक लोगों को म्यूज़िक थैरेपी दे चुके हैं। पिछले लगभग 34 सालों से दुनिया के लगभग 21 देशों में प्रस्तुति दे चुके मिलिंद कहते हैं– पानी ही इसके लिए अमृत है और पानी ही चुनौती। कनाडा जैसे देश में जब कार्यक्रम था तब वहाँ का तापमान ऋणात्मक 36 डिग्री था, तब डिस्टिल वाटर ही प्रयोग करना पड़ा था क्योंकि वह आम पानी की तुलना में देर से जमता है। पानी के बर्फ़ हो जाने या वाष्पीकृत हो जाने का भी असर इस वाद्य पर पड़ता है। यदि वाद्य ट्यून कर रखा और उमस, ऊष्मता ज़्यादा हो तो वह प्यालियों को एयर टाइट कर रखना लाज़मी हो जाता है। प्यालियों में अधिक पानी डालने पर स्वर नीचा और कम कर देने पर स्वर ऊँचा हो जाता है।

अच्छे क़िस्म के अलग-अलग स्वरों के प्यालों का चयन कर लेने भर से बात नहीं बनती, उसमें पानी की मात्रा कम-ज़्यादा करते हुए उन्हें ट्यून भी करना पड़ता है। एक सप्तक में सात शुद्ध, चार कोमल और एक तीव्र स्वर प्रयुक्त होता है। रागों के अनुसार प्यालों की संख्या कम हो सकती है, जैसे एक सप्तक कम या ज़्यादा कर लिया। बड़ा प्याला बाईं ओर तथा फिर उतरते क्रम में दाहिनी ओर चंद्राकार सजाया जाता है, आम तौर पर 24 प्यालों का जलतरंग सभी रागों के लिए पर्याप्त होता है। लेकिन जो इसका रस है, सार है, भीतरी आल्हाद है वह पानी की शुद्धता पर ही टिके हैं।

मिलिंद जी के पास 300 प्यालियों का संग्रह है। वे कहते हैं विदेशों में भी कहीं अच्छा बाउल दिखता है तो मैं ख़रीद लेता हूँ। यदि देशी प्यालियों का सेट कोई ख़रीदना चाहे तो आठ से दस हज़ार रुपए लगते हैं और विदेशी सिरेमिक का हो तो पंद्रह हज़ार तक खर्च आता है। उनके पास विदेशों से भी लोग सीखने आते हैं और देश से भी लेकिन सीखने वालों की संख्या इसलिए कम होती है क्योंकि यह उतना लोकप्रिय नहीं है जितना कि गिटार या पियानो। कुछ लोग कहते हैं कि इसमें मींड़ निकालना (एक सुर से दूसरे तक सहजता से बिना टूटन के पहुँचना) मुश्किल है इसलिए दक्षिण भारत में इसे वॉयलिन के साथ बजाया जाता है ताकि टूटन महसूस न हो हालाँकि सितार की तरह इस पर गत और धुनें भी बजाई जा सकती हैं लेकिन इसका तामझाम और इसे लेकर जाना उतना व्यावहारिक नहीं होता इसलिए भी लोगों का इस ओर रुझान कम दिखता है। इन्हें जिन पर रखा जाता है उन्हें सीट्स कहते हैं, वे लकड़ी के होने पर उनका वजन डेढ़ किलो तक हो जाता है, बाउल का वजन सात-आठ किलो फिर पैकिंग ऐसा कर कुल बारह-तेरह किलो वजनी इस वाद्य को हवाई यात्रा में ले जाना भी मुश्किल होता है। मिलिंद जी ने थर्मोकोल से सीट्स बनाकर इसके वजन को आठ-नौ किलो तक किया है। कई वाद्यों के साथ उनके द्वारा किये गए जुगलबंदी के प्रयोग इसे लोकप्रिय बनाने की दिशा में प्रयत्न जैसे हैं, जैसे जलतरंग और शहनाई, वॉयलिन, कथक (राजेंद्र गंगाणी), सितार, बाँसुरी, गायन, तबला (तौफ़ीक कुरैशी) आदि।

जलतरंग के प्रमुख वादक शशिकला दानी, कुमार पंकज सखारकर, शंकर कान्हेरे, दत्तोपंत मंगलवेधेकर, रामराव परसतवारी, मास्टर महरनाहर बर्वे, मिलिंद तुलणकर, दुलाल रॉय, रंजना प्रधान, चिंतामणि जैन, सीता दोराईस्वामी, शशिकला दानिश, अनयमपट्टी एस. गणेशन, अनयमपट्टी एस. धंदापानी, देवेंद्र शिवतारियारी, नेमानी सोमयाजुलु, कोट्टायम टीएस अजित, विकास अच्युतरामई, गजानन अंबाडे, सुगनान दानिक आदि हैं।

कभी बेगमों की हुकूमतों से रोशन रहे शहर भोपाल की रूह एक मुद्दत बाद फिर बेगम के सुर से महकी। ये भादों की भीगी-सी शाम थी। पानीदार बादलों से आच्छादित आसमान पर जब यकायक इन्द्रधनुष खिल उठा तो जैसे उसकी सतरंगी किरणों ने बेगम के लरजते कंठ में अपना आसरा तलाशा। मौक़ा भी, मुराद भी और दस्तूर भी... सो मल्हार का सरगम राग और बंदिश में कुछ ऐसा उमड़ा कि बादल और बौछारों के मुख्तलिफ़ अहसासों से अंतरंग तरबतर हो गया। बहुकला केन्द्र भारत भवन में हर बरस 'बादल राग' मौसम के माथे पर ऐसा ही सुरीला तिलक करता है। 'बादल राग' यानी भारतीय कलाओं में पावस की छवियों को संजोता उत्सव। सुर, ताल और लयकारी के ताने-बाने से सजे चार दिनी जलसे का आगाज़ करने आयी थीं मौसिक़ी की मल्लिका। हिन्दुस्तान ही नहीं, दुनिया के लाखों संगीत प्रेमी उन्हें बेगम परवीन सुल्ताना के नाम से पहचानते हैं।

बेगमों के शहर में 'बेगम' का 'बादल राग'

इस गुलदस्ते में महज़ 'मल्हार' की मिठास ही नहीं, 'हंसध्वनि' के राग की चंचल-चपल अठखेलियाँ भी शुमार हुईं। राग पीलू की एक बंदिश में श्रृंगार का रस उमड़ा तो संत मीरा की प्रेम भरी पुकार भी भक्ति की लौ जलाती रही। अपनी बेहद लोकप्रिय रचना 'भवानी दयानी' मिश्र भैरवी सुनाकर वे बादल राग के मंज़र को उस मुक़ाम पर ले गयी जहाँ संगीत तमाम फ़िरका-परस्तियों से परे इंसानियत का पैग़ाम समेट लाता है।

वही परवीन, जिन्हें भारत सरकार ने उम्र की पच्चीसवीं पादान पर पाँव रखने से पहले ही पद्म पुरस्कार देकर शास्त्रीय संगीत के संसार में हलचल मचा दी थी। लेकिन बेगम ने कम उम्र में मिले इस तोहफ़े का मान रखा। तालीम, रियाज़ और तहज़ीब से गहरे ताल्लुक़ात टूटने न दिये। गुरू-उस्तादों की सीखों का मान रखा। शोहरत और कामयाबियाँ बुलंदियाँ छूने लगीं। बेगम के करिश्माई गले ने ये साबित किया कि रूह से उठें जो सुर तो वे इबादत बन जाते हैं। यक़ीनन 'बादल राग' की उस महफ़िल में बेगम की लहराती तानों ने ऐसा ही तिलिस्म रचा। बक़ौल उन्हीं के, ''मेरे लिए संगीत ही सब कुछ है। मैं हर चुनौती को यहाँ स्वीकार करने तैयार हूँ। मेरा जवाब संगीत ही है।'' वही हुआ भी जब बेगम ने पुरूष गायकों में प्रचलित राग मिया मल्हार को अपने स्त्री कंठ के लिए चुना। लेकिन मुकुंद राजदेव के तबले और श्रीनिवास आचार्य के हारमोनियम की संगत में यह राग आसानी से अपने आरोह-अवरोह में रसिकों से हमजोली करता रहा। तबले की हर सम पर श्रोताओं का आनंद थाह पाता और यूँ सुरों का कारवाँ परवान चढ़ता रहा। इस गुलदस्ते में महज़ 'मल्हार' की मिठास ही नहीं थी, 'हंसध्वनि' के राग की चंचल-चपल अठखेलियाँ भी शुमार हुईं। राग पीलू की एक बंदिश में श्रृंगार का रस भी उमड़ा तो संत मीरा की प्रेम भरी पुकार भी भक्ति की लौ जलाती रही। अपनी बेहद लोकप्रिय रचना 'भवानी दयानी' सुनाकर वे बादल राग के मंज़र को उस मुक़ाम पर ले गयी जहाँ संगीत तमाम दुनियावी फिरकापरस्तियों से परे समता, ममता और एकता की हमजोली में इंसानियत का पैग़ाम समेट लाता है।

बेगम परवीन सुल्ताना मौजूदा दौर की एक ऐसी बेमिसाल फनकार हैं जिन्होंने विरासत के संगीत से अपना नाता जोड़कर दुनिया भर में उसे आसमानी पहचान बख़्शी है। अभ्यास और अनुशासन उनकी पूँजी है। मीठा कंठ, तार सप्तकों तक पहुँचता सुर और आध्यात्मिक गहराईयों को छूती उनकी गायिकी का असर कुछ ऐसा है कि रूह में घुलता संगीत इबादत में बदल जाता है। बिला शक, हमारे संगीत संगम की नायिका हैं परवीन सुल्ताना। भारत के पूर्वोत्तर प्रदेश आसाम के डेकेपट्टी गाँव में जन्म हुआ। बुनियादी तालीम अपने वालिद और पहले गुरु गायक और रबाब वादक इकरामुल माजिद के सख़्त अनुशासन में हुई। बेगम परवीन अपनी ज़मीनी सीखों के साथ कोलकाता गई और हिन्दुस्तानी संगीत के प्रकाण्ड गान अध्येता पंडित

भारत भवन के 'बादल राग' में बेगम को सुनने उमड़े मौसिक़ी के कद्रदान

चिन्मय लहिड़ी की छत्रछाया में रहकर गायन की तकनीक और उसके व्यावहारिक पहलुओं का उन्होंने मार्गदर्शन प्राप्त किया। 1973 में पटियाला घराने के उस्ताद दिलशाद खान का सानिध्य पाया।

बेगम की शोहरत और कामयाबी से जुड़े अनेक दिलचस्प पहलू है। मसलन महज़ बारह साल की उम्र में ये कोलकाता में अपनी पहली सार्वजनिक प्रस्तुति से श्रोताओं की चाहत में शुमार हो गयी और पन्द्रह बरस की आयु में अपने गायन के पहले रेकार्ड के ज़रिये उनकी आवाज तमाम सरहदें पार कर देश-दुनिया में फैल गयी। पद्म पुरस्कार को बहुत कम उम्र में पा लेने का गौरव तो है ही, इनसे इतर गंधर्व कलानिधि, तानसेन सम्मान, संगीत नाटक अकादेमी सम्मान, आसाम सरकार के संगीत साम्राज्ञी सम्मान, श्रीमंत शंकर देव सम्मान और एम.टी.वी. अवॉर्ड से भी परवीन को विभूषित किया जा चुका है।

ख़्याल ठुमरी और भजन सहित अनेक विधाओं को अपनी कंठ-माधुरी में आत्मसात करने वाली बेगम परवीन के गायन के एच. एम. व्ही. म्यूजिक इंडिया, ऑविडीज, मेग्नासाउण्ड, सोनोडिस्क सहित कई म्यूज़िक कंपनियों ने रेकार्डस जारी किये हैं।

बहरहाल, बेगम इस शाम बेहद प्रसन्न मन से भोपाल के श्रोताओं से पेश आयी। पहले तो मंच से दूर बैठे रसिकों को उन्होंने और क़रीब सिमट आने का आग्रह किया। फिर उस गुज़िश्ता दौर को याद किया जब एक महामारी की आपदा ने सबको दूर कर दिया था। उन्होंने कहा भी कि 'उपर वाले' का करम है कि हम फिर इस तरह एक महफ़िल में आमने-सामने हैं। जिसके पास डर नहीं है, मालिक उनकी रक्षा करता है। परवीन सुल्ताना ने ग़ौर किया कि उन्हें सुनने बड़ी तादाद में नौजवान भी मौजूद हैं। उनसे मुख़ातिब बेगम ने नसीहत भी दी कि तालीम की अहमियत तो हम सबकी ज़िंदगी में है ही लेकिन तहज़ीब अगर हमारे पास नहीं है तो तालीम का कोई मायना नहीं है। उन्होंने जोड़ा कि भोपाल के श्रोताओं को संगीत की न केवल समझ है बल्कि संगीत सुनने का सलीक़ा भी उनके पास है। कहती हैं कि भारत भवन आना सदा ही उन्हें सुकून देता है। यह मेरा दूसरा घर है।

इसी आत्मीय नातेदारी के चलते जब श्रोताओं ने फ़िल्म 'क़ुदरत' में गाये उनके गीत 'हमें तुमसे प्यार कितना' गाने की गुहार की तो बेगम साहिबा ने उनकी मुराद ख़ाली न जाने दी। तराना छेड़ने से पहले वो क़िस्सा भी सुनाया कि कैसे उन्हें इस गीत को गाने का प्रस्ताव संगीतकार आर.डी. बर्मन से मिला और किस तरह किशोर कुमार की आवाज़ में इस गीत की रेकार्डिंग हो जाने के बाद इसका फीमेल वर्जन भी शामिल किया गया। फिर किशोर कुमार बेगम परवीन सुल्ताना की आवाज़ पर किस तरह फ़िदा हुए!

परवीन सुल्ताना ने ग़ौर किया कि उन्हें सुनने बड़ी तादाद में नौजवान भी मौजूद हैं। उनसे मुख़ातिब बेगम ने नसीहत भी दी कि तालीम की अहमियत तो हम सबकी ज़िंदगी में है ही लेकिन तहज़ीब अगर हमारे पास नहीं है तो तालीम का कोई मायना नहीं है।

बातों के सिलसिले में बेगम ने बताया कि वे फ़िल्म इंडस्ट्री से ज़रा दूर ही रहना चाहती थी लेकिन मदन मोहन, जयदेव, एस.डी. बर्मन और पंचम जैसे बेहद क़ाबिल, गुणी और प्रयोगधर्मी संगीतकारों की वज़ह से एक दौर तक सिने संगीत से जुड़ी रहीं। तब वे युवा थीं और ऐसे तमाम संगीतकार उनसे बेहद प्यार करते थे। परवीन ने थोड़ा अफ़सोस के साथ कहा कि अब न तो वैसे संगीतकार फ़िल्म इंडस्ट्री में हैं और न वैसी जगह वहाँ दिखाई देती है कि मुझ जैसे क्लासिकल सिंगर की आवाज़ की कोई क़द्र करे। लेकिन दुनिया भर के मंच और महफ़िलों को रोशन कर चुकी परवीन सुल्ताना ने पिचहत्तर के आसपास उम्र और हौसले के बीच जो सुरीला संतुलन बनाया है वो हिन्दुस्तानी संगीत के सच्चे और पाक सुरों की कसौटी बन गया है।

- विनय उपाध्याय

नया आसमान नया रंग

सतरंगी आभा कला के गलियारों तक फैली तो तरूणाई का ताप क़तरे-क़तरे में उतर आया। शब्द, रंग, दृश्य, सुर-ताल, लय-गति और अभिनय से लेकर छवियों तक युवा प्रतिभाओं की उमंगें थिरक उठीं। आभासी दुनिया से निकलकर रचना का यह परिसर जीवंत संवाद और मेल-मिलाप के लिए युवाओं की अहम जगह बना। अपने हृदय प्रदेश के उस सांस्कृतिक पुरूषार्थ और विरसे में मिली थाती को भी एक बार फिर स्मृति में अँजोरने का यह सुनहरा मौक़ा था जिसके बग़ैर मध्यप्रदेश की पहचान अधूरी है।

15 से 21 जुलाई के दरमियानी सात दिन जैसे बंद लिफ़ाफ़ों में महफूज़ ख़ुश्बुओं के ख़त थे। एक-एक कर लिफ़ाफे खुलते गये। सावन की सौंधी आहटों के बीच सुबह-शामें सँवरती रही। सांस्कृतिक सौहार्द, समरसता और रचनात्मक विनिमय की एक नई दुनिया उकेरता यह समारोह था- 'युवा'। बहुकला केन्द्र भारत भवन के संयोजन में फैला यह उत्सव जिस सृजनात्मक सूझ, सुरूचि और विवेक से गढ़ा गया, उसे अमूमन सरकारी खानापूर्ति की बलि चढ़ने वाली गतिविधियों से परे नई पीढ़ी के लिए संभावना का नया आकाश रचने की ज़रूरी पहल कहा जा सकता है। भारत भवन ने अपनी बुनियादी आकांक्षा को लक्ष्य करते हुए अपनी गतिविधियों के विस्तार में समकालीन युवाओं की भागीदारी को भी सुनिश्चित किया है। दरअसल, आचरण, अभ्यास, जिज्ञासा, उत्साह, हौसले और परिश्रम की ज़मीन पर खड़े होकर अपनी परंपरा और आधुनिकता से आँख मिलाने, सोचने और रचने की हुमस से भरी तरूणाई के ताप को क़रीब से देखने-महसूसने का यह मंच है। उस सांस्कृतिक-वैचारिक हस्तक्षेप और उद्वेलन का मंच, जो अपनी विरासत का मान रखते हुए अपने उत्तराधिकार में अनुभव के नए आयाम जोड़ता रहा है। संभावना की ओर खुलता एक आकाश, जिसमें कल्पना के नए रंग उभरते रहे। रंगों का यह उजास कभी कविता में, कहानी में, कभी संगीत की स्वर लहरियों में, कभी नृत्य की लय-गतियों और मुद्राओं में तो कभी रंगमंच पर संवाद और अभिनय में बिखरता रहा है। इस तरह अपनी मौलिकता का उत्सव मनाते हुए भी एक आंतरिक अनुशासन की लय में बिंधा रचनात्मक आवेग युवा प्रतिभाओं की पहचान रहा है। इसी जागृत और

आत्मचेतस युवा बोध का प्रतीक बना यह समारोह। इस बात की पुष्टि मुदित श्रीवास्तव, अनुलता राज नायर, निशांत उपाध्याय, सुदीप सोहनी, सलोनी गीते, सुरभि जैन और शिवांगी पाण्डे जैसी अनेक युवा प्रतिभाओं के चेहरों पर खिलती गर्वोचित मुस्कान से होती रही जो एक मुद्दत से भारत भवन के मंच पर अपनी बारी के मुंतज़िर थे।

यह युवा रचनाशीलता के लिए इकहरे प्रतिनिधित्व का समारोह नहीं था यह आती हुई युवा नस्ल और अग्रणी गुणी अग्रज पीढ़ी के बीच सृजन संवाद का साझा मंच भी था। यानी प्राची मुदलियार और वैदेही फगरे जैसी युवा शास्त्रीय नृत्यांगनाएँ अपनी उमगती लय-गतियों के साथ शामिल थीं तो डा. लता मुंशी, बिंदु जुनेजा, श्वेता देवेन्द्र और क्षमा मालवीय जैसी वरिष्ठ नृत्यांगनाओं की उपस्थिति भी प्रेरणा और मार्गदर्शन की मिसाल बनीं। संजय द्विवेदी, विनोद परमार, जावेद, अमित मलिक और रामेन्द्र सिंह सोलंकी सरीखे युवा संगीतकारों ने सभा को निनादित किया, तो प्रवीण शेवलीकर और शिप्रा सुल्लेरे जैसे वरिष्ठ संगीतकारों ने मध्यप्रदेश की सांगीतिक धरोहर को याद कर महान साधकों के योगदान को रेखांकित किया। आशीष श्रीवास्तव ने अपने युवा साथियों के साथ मिलकर नाटक 'बेटर हाफ' खेला तो कारंत, हबीब तनवीर, बंसी कौल और हबीब तनवीर जैसे रंग पुराधाओं को भी सभी ने मिलकर श्रद्धा से याद किया। मध्यप्रदेश के शहर-क़स्बों से दो दर्जन युवा चित्रकारों और शिल्पियों ने शिविरबद्ध होकर कलाकृतियों को सिरजा तो उन्हें देखने-सराहने और अपनी सलाहों से उनको सँवारने लक्ष्मीनारायण भावसार, देवीलाल पाटीदार और शोभा घारे जैसी रूपंकर कलाओं की अनुभवी विभूतियाँ आगे आयीं। सबसे महत्वपूर्ण और बुनियादी महत्व का पहलू जुड़ा लोक तथा जनजातीय संस्कृति के रचनात्मक उत्स और उसके वैभव का। मध्यप्रदेश इस दृष्टि से भारत ही नहीं विश्व मंच पर ख्यात है। संस्कृति के प्रकाण्ड अध्येता नर्मदा प्रसाद उपाध्याय की अध्यक्षीय उपस्थिति में हुए विशेष सत्र में बुंदेली, मालवी, निमाड़ी और बधेली लोक कलाओं तथा भील, गोंड, कोरकू, सहरिया, बैगा और कोल

बुनियादी महत्व का पहलू जुड़ा लोक तथा जनजातीय संस्कृति के रचनात्मक उत्स और उसके वैभव का। मध्यप्रदेश इस दृष्टि से भारत ही नहीं विश्व मंच पर ख्यात है। संस्कृति के प्रकाण्ड अध्येता नर्मदा प्रसाद उपाध्याय की अध्यक्षीय उपस्थिति में हुए विशेष सत्र में बुंदेली, मालवी, निमाड़ी और बधेली लोक कलाओं तथा भील, गोंड, कोरकू, सहरिया, बैगा और कोल आदिवासियों की सर्जना के सच को बड़ी ही आत्मीय सजगता से देखना मुमकिन हुआ।

आदिवासियों की सर्जना के सच को बड़ी ही आत्मीय सजगता से देखना मुमकिन हुआ। शिवशंकर मिश्र सरस, उर्मिला पाण्डेय, भज्जू श्याम, दुर्गा बाई व्याम और विनय उपाध्याय ने मिलकर सत्र की वैचारिकी को नया उन्मेष प्रदान किया। कहानी और कविता पर केन्द्रित विमर्श तथा पाठ के आयोजन मध्यप्रदेश की साहित्यिक महिमा के रेखांकन की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहे। मनोज श्रीवास्तव, विकास दवे, मुकेश वर्मा, भालचन्द्र जोशी, आनंद सिंह, आशुतोष दुबे, उत्पल बैनर्जी आदि ने संवाद का परिवेश रचा तो अपनी रचनाओं के साथ चित्रा सिंह, भास्कर, श्रुति कुशवाह, ऋतु पल्लवी, अनिल श्रीवास्तव पूरे आत्मविश्वास के साथ पेश आये। बीच के एक दिन सुदीप सोहनी द्वारा निर्देशित बहुचर्चित फ़िल्म 'तनिष्का' का प्रदर्शन भी हुआ। दर्शकों की उमड़ती भीड़ 'हाऊस फुल' के नाम पर इस लघु फ़िल्म का हासिल बनीं।

'युवा' की सांस्कृतिक सभाएँ अपनी परंपरा का राग छेड़ती जिस तरह झिलमिल और मनोहारी बन पड़ीं उन्हें ग़ौर करते हुए नई प्रतिभा पर गर्व भी उमड़ा कि उन्होंने सच्चे उत्तराधिकार का संकेत दिया है। युवा कंठों में लरजता मध्यप्रदेश का लोक राग इस यक़ीन पर मोहर लगाता रहा कि तहज़ीब के नाम पर मप्र की रंगभूमि पर हमेशा उत्सवों की लालिमा तैरती रहेगी।

समारोह का विहंगम एक ऐसी समग्रता रचता है जहाँ मध्यप्रदेश की सर्जना का उजास उस युवा पीढ़ी तक फैलता दिखाई देता है जो अपनी परंपरा से प्रेरित और संस्कारित होकर नवाचार का साहस रखती है। निश्चय ही उसके सामने बहुलता की क़िस्म अलग तरह की है। उसके वक़्ती दौर की चुनौतियाँ, धीरज, भ्रम, विचलन, संशय, संघर्ष और सपने जुदा हैं। लेकिन अपनी रचनाशीलता का स्पेस तलाशना यह तरूण पीढ़ी जानती है। अभिव्यक्ति के नए मंच के अनुकूल वह अपना कौशल अख़्तियार कर रही है। यहाँ रचनात्मक विवेक, गहराई, संवाद, साधना और संयम को लेकर बहस होती रही। यह भी कि युवा रचनाकारों के तेवरों में ताप है उर्वर कल्पनाशीलता भी लेकिन प्रसिद्धि की शीघ्रता, प्रशंसा और आत्ममुग्धता ने उससे अभ्यास और धीरज का अवकाश छीन लिया है। फिर भी उनका बावरा मन अपने सपनों के मिट्टी-गारे को संजोकर एक नई क़ायनात को आकार देने मचल पड़ा है। यह सूत्र कहीं उनके हाथ लगा ही है कि जीवन को गहरे में समझने तथा बेहतर बनाने के रास्ते साहित्य और संस्कृति से ही होकर गुज़रते हैं। यही वो ज़रिया है जहाँ से नई प्रेरणा और सोच का उजाला फूटता है। 'युवा' की सांस्कृतिक सभाएँ अपनी परंपरा का राग छेड़ती जिस तरह झिलमिल और मनोहारी बन पड़ीं उन्हें ग़ौर करते हुए नई प्रतिभा पर गर्व भी उमड़ा कि उन्होंने सच्चे उत्तराधिकार का संकेत दिया है। युवा कंठों में लरजता मध्यप्रदेश का लोक राग इस यक़ीन पर मोहर लगाता रहा कि तहज़ीब के नाम पर मध्यप्रदेश की रंगभूमि पर हमेशा उत्सवों की लालिमा तैरती रहेगी।

अपनी हदों में एक लक्ष्य को साधकर भारत भवन ने इस समारोह के जरिये बड़ी संभावना का फ़लक तैयार किया है। कवि और भारत भवन के मुख्य प्रशासनिक अधिकारी प्रेमशंकर शुक्ल ने अपने स्वागत भाषण में ही संकेत दिया कि यह आयोजन अपनी कल्पना के वितान में सीमा में बंधा है लेकिन यह मध्यप्रदेश सहित दीगर राज्यों की युवा रचनाशीलता के लिए एक मॉडल की तरह काम कर सकता है यानि एक बड़े सांस्कृतिक कुंभ की कल्पना जीवंत हो सकती है। अगर ऐसा मुमकिन हो सका तो यह भारत भवन के इस आयोजन का बड़ा हासिल होगा।

भारत भवन के मंच पर निमाड़ी लोक गायनः सलोनी गीते एवं दल

देश की माटी, देश का राग

दयानंद पांडेय

आज़ादी की लड़ाई के समय प्रतिबंधित लोकगीतों को मालिनी ने फिर से स्वर दे दिया। हम नहीं जानते थे कि अंग्रेज़ों ने चैती, कजरी, ठुमरी बिरहा आदि को भी कभी प्रतिबंधित कर दिया था। मालिनी द्वारा संयोजित 'मुक्तिगाथा' ऐसे कई पोशीदा पहलुओं का ख़ुलासा साबित हुई।

देश प्रेम की इस महफ़िल में सारे नामचीन लोग थे... और अविकल, अभिराम मालिनी थीं। मालिनी अवस्थी। आज़ादी के गीत गाती हुई, मीरा की तरह नाचती हुई। बहुत समय बाद ये शाम इतनी मधुर, संगीतमय, सघन, गरिमामयी, भावुक और समृद्ध हुई। यह आज़ादी के अमृत महोत्सव पर 'सोनचिरैया' द्वारा 'मुक्तिगाथा' की शाम थी। इस प्रस्तुति में मालिनी अवस्थी ने कलेजा काढ़ लिया। मालिनी नि:संदेह अब बहुत बड़ी स्टेज परफ़ार्मर हो चली हैं। मालिनी की यह पेशकश अविरल, अलहदा, अदभुत और अनूठा थी। मैं उन्हें चार दशक से भी अधिक समय से सुनता और देखता आ रहा हूँ। मालिनी की गायकी की क़िस्म-क़िस्म के रंग से रुबरु और वाक़िफ़ हूँ। मुतासिर भी। ग़ज़ल गायकी, शास्त्रीय गायन, लोक गायन जैसे कई पड़ाव हैं मालिनी के। मंच और महफ़िलों के जाने कितने मंज़र उनके उजास से भरे हमने देखे हैं।

संगीत साधना है। तपस्या है। आत्मा भी। मालिनी ने इसी आत्मा को देशभक्ति और स्वतंत्रता संग्राम को संगीतात्मक कथा में निरुपित कर लखनऊ में संगीत नाटक अकादमी के संत गाडगे प्रेक्षागृह में सदानीरा नदियों की अजस्र धारा को जैसे प्रवाहित कर दिया। मंगल पांडेय की क्रांति कथा से ब्रिटिश राज के अत्याचारों की कथा को गायन, नृत्य, अभिनय, वाचन और चित्रों के कोलाज में जिस तरह शुरू किया वह अनिर्वचनीय था। अविकल था। आल्हा गाते आज मालिनी को सुनना जैसे किसी हरहराती नदी के वेग को सुनना था। क्रांतिकारियों की वीरता को आल्हा में ही सही स्वर दिया जा सकता था। मालिनी ने यही किया। सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता में भी यह ओज बह निकला- ''बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी/ ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।'' रानी लक्ष्मी बाई की वीरगाथा गाते हुए मालिनी चौरीचौरा, काकोरी, नेता जी सुभाष चंद्र बोस, भगत सिंह, बिस्मिल, आज़ाद आदि अनेक क्रांतिकारियों की वीरगाथा में पगा आल्हा गाते हुए अचानक भोजपुरी गीतों पर आ गईं।

भोजपुरी गाते-गाते ग़ज़ल पर आ गईं। आज़ादी की लड़ाई के समय तमाम प्रतिबंधित लोकगीतों मालिनी ने फिर से स्वर दे दिया। हम नहीं जानते थे कि अंग्रेजों ने चैती, कजरी, ठुमरी बिरहा आदि को भी कभी प्रतिबंधित कर दिया था। पर मालिनी ने यह बताते हुए ऐसे कई सारे प्रतिबंधित गीत गाए। प्रार्थना, ग़ज़ल और बंदिश भी मालिनी की आज की गायकी के गमक भरे अंग थे। खटका, मुरकी कब आए और कब गए, यह जोहने और सोचने का अवकाश भी कहाँ था किसी के पास। था तो एक जादू था। सिर चढ़ कर बोलता जादू। गायकी में ठहर कर, आज़ादी की साँस का जादू।

लगभग घंटे भर की इस मुक्तिगाथा में कब 15 अगस्त और वंदे मातरम् आ गया, कथा में कब विराम आ गया, पता ही नहीं चला। स्वतंत्रता संग्राम के इतने बड़े कालखंड को एक घंटे से कुछ कम समय में संगीत और नृत्य में बाँध कर पेश करना बहुत कठिन और श्रमसाध्य था। ख़चा-ख़च भरे हाल में अजब जोश था। लोग एकटक, अभिराम देख रहे थे। सुन रहे थे। लोग थे, वीरों की गाथा थी, मालिनी की गायकी थी और रह-रह तालियों की गड़गड़ाहट थी। दर्शकों में राज्यपाल आनंदीबेन पटेल, मुख्य मंत्री योगी आदित्यनाथ भी थे। तमाम और सारे नामचीन लोग और अविकल, अभिराम मालिनी थीं। मालिनी अवस्थी। आज़ादी के गीत गाती हुई, मीरा की तरह नाचती हुई। मंत्रमुग्ध करती हुई।

मुक्तिगाथा की गायकी और इस के संगीत, नृत्य की जितनी तारीफ़ की जाए, कम है। नृत्य संयोजन लेकिन अप्रतिम था। कई बार बिरजू महाराज याद आ गए। मालिनी की इस मुक्तिगाथा का जादू इसी एक बात से समझ लीजिए कि राज्यपाल आनंदी बेन पटेल ने कहा कि इस मुक्तिगाथा को देश भर के स्कूलों, कॉलेजों में दिखाया जाना चाहिए। वह मुक्तिगाथा से इतनी प्रभावित थीं कि राजभवन की तरफ़ से दस लाख रुपए सोनचिरैया को दिए जाने का ऐलान कर दिया। मुख्य मंत्री योगी ने कहा कि सोनचिरैया मतलब सोने की चिड़िया। ऐसे कार्यक्रम से देश को फिर से सोने की चिड़िया बना सकते हैं।

मुक्तिगाथा मालिनी के संगीत का शिखर है। वह और भी शिखर ज़रुर छुएँगी, पर आज़ादी के इस अमृत महोत्सव में मुक्तिगाथा मालिनी का उत्कर्ष है। अभी तो मुक्तिगाथा को लखनऊ के लोगों ने देखा है। देश जब देखेगा, देखता ही रहेगा। थकेगा नहीं। मालिनी की मुक्तिगाथा से किसी को मुक्ति नहीं मिलने वाली। आज़ादी के इतिहास की ऐसी संगीतमय कथा दुर्लभ है। मुक्तिगाथा की लय और इस का लास्य दोनों ही इस कथा को अप्रतिम बनाते हैं। मालिनी यानी निर्मल गंगा सी बहती हुई कोई पवित्र धारा। जानिए कि गंगा का एक नाम मालिनी भी है। गिरिजा देवी की यह शिष्या अभी बहुत आगे जाने वाली है। दिल थाम कर बैठिए।

सौहार्द की सौंधी महक : 'आयाम'

व्याख्यान, पाठ और पुस्तक वार्ता

साहित्य-संस्कृति के गौरव से गमकती खंडवा की रंगभूमि पर अबकी सावन की रंगत कुछ ऐसी खिली कि शहर की धड़कनों में अब भी उसकी आहटें बाक़ी हैं। वनमाली सृजन पीठ, टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केंद्र, निमाड़ लोक कला और संस्कृति केंद्र और आईसेक्ट की साझा पहल पर डॉ. सी.वी. रामन विश्वविद्यालय का परिसर नई सांस्कृतिक चहक-महक से सरोबार रहा। 6, 7 और 8 अगस्त की दरमियानी दुपहरी और शामें साहित्य और कला के सृजन, दर्शन और मनन की नई प्रेरणा लिए प्रकट हुईं। इस तीन दिवसीय समारोह को नाम मिला- 'आयाम'। व्याख्यान, पाठ और पुस्तक वार्ता के आयामों को सँजोती गतिविधियाँ रचनात्मक संवेदना के साथ ही सांस्कृतिक सौहार्द की नई ज़मीन तैयार करती रहीं। विश्वमंच पर स्थापित चित्रकार और कला गुरू अशोक भौमिक का व्याख्यान और संवाद एक महत्वपूर्ण आयाम था तो दूसरी ओर कला समीक्षक तथा संपादक विनय उपाध्याय की बहुचर्चित पुस्तक 'सफ़ह पर आवाज़' का लोकार्पण और उस पर चर्चा ने सांस्कृतिक विमर्श की नई दिशाएँ खोलीं। खंडवा की साहित्य बिरादरी को नवनिर्मित वनमाली सभागार मिला तो पावस को पुकारती कविताओं ने मन का आँगन भिगोया। संतोष चौबे अपनी नई कहानी का दिलचस्प पाठ करते हुए पेश आए तो उस शाम का ज़ायका नया जीवन रस समेट लाया। यूँ खंडवा के आसमान पर इंद्रधनुष उभर आया।

'आयाम' का शुभारंभ 6 अगस्त को डॉ. सी. वी. रामन विश्वविद्यालय के सभागार में हुआ। प्रख्यात चित्रकार और कलागुरु अशोक भौमिक वनमाली व्याख्यान माला के प्रमुख वक्ता के रूप में उपस्थित थे। 'कला का सच' विषय पर

वनमाली व्याख्यानमाला, खंडवा: अशोक भौमिक

'आयाम' के एक सत्र में जय नागड़ा, संतोष चौबे, श्रीराम परिहार और विनय उपाध्याय

कला समीक्षक विनय उपाध्याय और चित्रकार शबनम शाह ने भौमिक जी के साथ संवाद किया। भौमिक जी ने कहा कि चित्रकला एक ऐसी विधा है जिसमें दर्शक को यह नहीं पता चलता कि उसमें वह कब शिक्षित हो रहा है। जिस तरह एक रचनाकार अपने रचनाकर्म में ख़ुद को आज़ाद रखना चाहता है वैसे ही उसे दर्शक को भी आस्वाद और प्रतिक्रिया के लिए उतनी ही आज़ादी देनी चाहिए। भौमिक जी जे जोड़ा कि अन्य कलाओं की तुलना में चित्रकला के हिस्से में कम ही रसिक आए हैं। बेवजह ही ये कला जटिल मान ली गयी। इसके लिए चित्रकार और कला आलोचक काफ़ी हद तक ज़िम्मेदार हैं। विश्वविद्यालय के कुलाधिपति, साहित्यकार संतोष चौबे ने संवाद में हस्तक्षेप करते हुए कहा कि भारतीय चित्रकला में कथाओं का एक विशेष महत्व रहा है, अगर कथाओं को चित्रकला से दूर कर देंगे तो हम हमारी संस्कृति और परम्पराओं से भी दूर हो जाएँगे।

अपने सवालों और मन्तव्यों के साथ संवाद में हिस्सा लेते हुए विनय उपाध्याय ने जनजातीय लोक चित्र परम्परा का आधुनिक चित्रकला के बरअक्स ज़िक्र किया। यहाँ संतोष चौबे के वक्तव्य का सन्दर्भ भी जुड़ा कि हमारी परंपरा में सदियों से चित्रकला कथा आख्यान ही रही है। शबनम शाह ने नई पीढ़ी के चित्रकारों के उचित प्रशिक्षण तथा चित्रकला के बाज़ार और गुटबंदियों को चुनौती बताया। ग़ौरतलब है कि हाल ही में प्रकाशित भौमिकजी की पुस्तक 'भारतीय चित्रकला का सच' काफ़ी चर्चा में है।

वनमाली सभागार की सौग़ात : 'आयाम' के दूसरे दिन (7 अगस्त) को वैकुण्ठ नगर, खंडवा स्थित वनमाली परिसर में नवनिर्मित वनमाली सभागार का लोकार्पण संतोष चौबे जी ने किया। लोकार्पण के बाद स्थानीय रचनाकारों शैलेन्द्र शरण, अरुण सातले, रघुवीर शर्मा, प्रदीप दुबे दीप, सूफ़ियान काज़ी, शिवा राठौर तथा भोपाल से पधारे संतोष चौबे, संजय सिंह राठौर और मुदित श्रीवास्तव ने पावस पर केन्द्रित कविताओं का पाठ किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता शहजाद कुरैशी ने की।

'सफ़ह पर आवाज़' : वनमाली व्याख्यान के तीन दिवसीय साहित्यिक समारोह 'आयाम' का समापन विनय उपाध्याय की हाल ही प्रकाशित साक्षात्कारों की पुस्तक 'सफ़ह पर आवाज़' के लोकार्पण और समीक्षा संवाद के साथ हुआ। साहित्य-संस्कृति के अध्येता श्रीराम परिहार की अध्यक्षता में संतोष चौबे, कैलाश

खंडवा में वनमाली सभागार का शुभारंभ

मंडलेकर, गोविन्द गुंजन, जय नागड़ा आदि ने पुस्तक पर अपने समीक्षात्मक विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम की शुरुआत करते हुए संचालक जय नागड़ा ने कहा कि इत्र की शीशी की तरह खुलती है किताब 'सफ़ह पर आवाज़'। उन्होंने 350 से भी ज़्यादा पृष्ठों में फ़ैली इस किताब का सन्दर्भ लेते हुए कहा कि पत्रकारिता के नए विधार्थियों के लिए यह पुस्तक साक्षात्कार कला का दस्तावेज़ी ग्रन्थ है। कुछ देर से ही सही लेकिन विनय ने एक मुकम्मल, बेमिसाल और उपयोगी सौग़ात पाठकों को सौंपी है।

कवि-निबंधकार गोविन्द गुंजन ने कहा कि हर सदी का अपना एक क़िस्सा होता है, समय हमसे कुछ कहना चाहता है लेकिन हम उसे सीधे-सीधे नहीं सुन सकते लेकिन जो कला साधक होते हैं समय उनके भीतर उतर कर उनसे संवाद करता है, विनय उपाध्याय की यह किताब समय की यही आवाज़ हम तक पहुँचाती है। व्यंग्यकार कैलाश मंडलेकर ने कहा कि कहानी, कविता और उपन्यास पर बहुत आलोचना की गई है लेकिन साक्षात्कार जैसी महत्वपूर्ण विधा पर आलोचकों ने कभी ध्यान नहीं दिया। कवि-कथाकार संतोष चौबे ने कहा कि इस किताब में जितने साक्षात्कार है, उनमें एक सलीका एक संस्कार और एक दृष्टि नज़र आती है। कुछ चुनिन्दा पुस्तकें मेरे शयनकक्ष में हमेशा रखी रहती है जिन्हें मैं बार-बार पढ़ता रहता हूँ, 'सफ़ह पर आवाज़' भी अब उन चुनिन्दा पुस्तकों में शामिल हो चुकी है। चौबे ने विनय उपाध्याय की सांस्कृतिक यात्रा को एक जिज्ञासु और संजीदा लेखक-पत्रकार की धीरज के साथ की जाने वाली यात्रा बताया। कार्यक्रम के अध्यक्ष श्रीराम परिहार ने पुस्तक और लेखक की सांस्कृतिक प्रतिबद्धता की गहरी मीमांसा की। कहा कि इस किताब में किए गए साक्षात्कार दरअसल साक्षात्कार नहीं, संवाद हैं और यह संवाद शैली विनय ने पिछले 25 सालों में कालाकारों को देखते-सुनते और उनका अध्यन करते हुए विकसित की है। परिहार ने यह भी कहा कि इस किताब में रचनाकारों से हुई बातचीत इन कला विधाओं के इतिहास की ओर भी ले जाती है। यह एक साहित्यिक पुण्य का काम है। अपने कृतज्ञ उद्बोधन में लेखक विनय उपाध्याय ने अपने सांस्कृतिक रुझानों तथा इस यात्रा में मिले मार्गदर्शन तथा प्रोत्साहन को रेखांकित किया। अपने आत्मकथ्य में विनय ने ख़ुलासा किया कि मूर्धन्य विभूतियों से हुए ये दुर्लभ संवाद उनके लिए जीवन का बड़ा हासिल रहा। उनके लिए यह संवाद किसी बड़े पुरस्कार से कम नहीं। उन्होंने कहा कि मक़बूल शख़्सियतों से मिलना इतना आसान भी न था, मगर बेचैनियों की ज़िद कुछ ऐसी रही कि इन दिग्गजों के द्वार मेरे लिए खुल गये। दंभ और अहमन्यता के पूर्वाग्रहों से परे सहज अपनापे का उजास लिए ये शिखर विभूतियाँ संवाद की ज़मीन पर उतर आयीं।

एक महत्वपूर्ण सत्र संतोष चौबे के कहानी पाठ का भी हुआ। अपनी हाल ही में लिखी लम्बी कहानी 'चेरी और नाना' सुनाते हुए उन्होंने बिलकुल नए कथ्य और शिल्प में ढली रचना का नाटकीय पाठ करते हुए श्रोताओं को भाव-विभोर कर दिया। यह कहानी पकी उम्र के एक ख़ास मोड़ पर जीवन के प्रति सहज आनंद तथा मन के नए विज्ञान की उथल-पुथल को बहुत ही रोचक ढंग से अभिव्यक्त करती है।

'आयाम' की गतिविधियों के दौरान गीतकार रघुवीर शर्मा की पुस्तक समीक्षा के आलेखों पर केन्द्रित कृति (सम्पादन-गोविन्द शर्मा), निमाड़ लोक कला एवं संस्कृति केंद्र के ब्रोशर और आईसेक्ट प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'वनमाली की दस कहानियाँ' का विमोचन भी किया गया। कार्यक्रम का संयोजन शरद जैन, गोविन्द शर्मा और लुकमान मसूद ने मिलकर किया।

-चंद्रकांत टेम्बे

बेढब लकड़ियों का बेमिसाल शिल्पी

मनीष वैद्य

ज़रा ग़ौर से निहारें तो हर साधारण में कुछ न कुछ असाधारण अवश्य छिपा होता है। वह हर समय प्रकट नहीं होता। मौक़ा आने पर, परिस्थिति बनने पर अचानक प्रकट होता है और हम हैरत में पड़ जाते हैं। एक कलाकार भी यही काम अपनी कलाकृतियों में अक्सर करता है। उसकी आँख में वह असाधारण पहचानने, देख पाने की अनुपम शक्ति होती है।

यह अनुपम शक्ति या कहें हुनर, वह अपने लंबे जीवनानुभव और अध्यवसाय, रियाज़ के सहारे पाता है, उसे 'अचीव' करता है और जब यह हुनर उसके नज़रिये में आने लगता है तो उसकी कलाकृतियाँ बेज़ुबान होकर भी बोलने-बतियाने लगती है। ऐसे ही एक कलाकार वरिष्ठ काष्ठशिल्पी क़रीब सत्तर साल की पकी उम्र में भी अपने काम में लगातार सक्रिय सोहन जोशी हैं। अपने नाम के साथ 'एकलव्य' भी लगाते हैं। वे अपने श्रमसाध्य हुनर से बेजान लकड़ियों में आकार को जीवंत कर देते हैं। वे लकड़ी के बेढब टुकड़ों को सुंदर कलाकृतियों में तराशकर सामने रखते हैं तो देखने वाले दंग रह जाते हैं। सत्तर साल की पकी उम्र में भी उनमें युवाओं-सा जोश दिखाई देता है। हर दिन आठ से दस घंटे तक काम करते हैं। यह शौक अब उनका मिशन बन गया है।

वे कहते हैं कि कला हमें सुंदरता को देखने का नज़रिया देती है। कला दुनिया को सुंदर और मानवीय बनाना चाहती है। कला हमें सामाजिकता से जोड़ती है। हमें सरोकारी बनाती है। कला का सम्बन्ध कलाकार के जीवन से कितना और किस प्रकार का है? यह एक बुनियादी प्रश्न है और जिस विचार पर हमारा पूरा ढाँचा खड़ा है। जो कला उसके सामाजिक हस्तक्षेप को बढ़ाती है, सामाजिक सक्रियता को भी गति देती है, उस कला की महत्ता उसके जीवन में भी है और समाज में भी उतनी ही है।

हमारे यहाँ यह बहस वही पुराने सवाल खड़े करती है कि कला जीवन के लिए है या कला, कला के लिए है? यदि कला जीवन के लिए होगी तो कलाकार का सारा काम, उसकी सारी गतिविधियाँ अंततः उसी के हिस्से की तरह होगा लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई रचना कलात्मक मूल्यों को बिल्कुल ही ख़ारिज कर रचना की तरह खड़ी रह सके। उसे रचना की बुनियादी शर्तों पर तो खड़ा रहना ही पड़ेगा। कलाकार की कला उसका हासिल है, लेकिन वह उसे

जन्मजात प्रदत्त नहीं है। वह उसे अपने जतन, मेहनत, रूचि, ज़ज्बे और जुनून से प्राप्त करता है। समाज के सहयोग को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता।

काष्ठ शिल्प मेहनत और बहुत ही बारीकी का काम है। पहले लकड़ी का छिलका निकालते हैं, रेशा देखना पड़ता है। फिर लकड़ी को घिसकर चिकना किया जाता है। उस पर ड्राइंग की जाती है, उसके बाद उसे उकेरना प्रारंभ करते हैं। एक कृति बनाने में तीन से चार महीने भी लग जाते हैं।

हमेशा पर्दे के पीछे रहने वाले संकोची कलाकार सोहन जोशी एकलव्य ने बातचीत में बताया कि यह काम बेहद श्रमसाध्य, ख़र्चीला और लंबे धीरज का है। लेकिन इसे लगातार करते हुए अब इस काम को करने में उन्हें आत्मिक संतोष महसूस होता है। वे बताते हैं कि दरअसल लकड़ी की पहचान करना और उसमें आकृति ढूँढ़ना ही सबसे मुख्य होता है। जब उचित लकड़ी मिल जाती है तो आरा मशीन या वन विभाग से ख़रीदते हैं। लकड़ी की मोटाई का ध्यान रखना होता है क्योंकि उसे कुरेदकर आकृति बनाई जाती है। काष्ठ शिल्प मेहनत और बहुत ही बारीकी का काम है। पहले लकड़ी का छिलका निकालते हैं, रेशा देखना पड़ता है फिर लकड़ी को घिसकर चिकना किया जाता है। उस पर ड्राइंग की जाती है, उसके बाद उसे उकेरना प्रारंभ करते हैं। एक कृति बनाने में तीन से चार महीने भी लग जाते हैं।

जोशी के अनुसार भारत में अच्छी क्वालिटी की लकड़ियाँ बहुत कम है। इसके लिए सागवान और आम की लकड़ी अधिक अच्छी मानी जाती है। पर सागवान बहुत क़ीमती है, महंगाई के कारण लकड़ी नहीं मिलती। काष्ठ शिल्पियों को वन विभाग से दो महीने में एक बार नीलामी में लकड़ी मिलना चाहिए। अब यह है कि जब लकड़ी मिलती है तब आकृति बनाते हैं।

जोशी ने बताया कि वे जब छोटे थे तब नाना के यहाँ खेत पर जाते थे तो देखा कि पक्षियों को भगाने के लिए कागभगोड़ा बीच खेत में रखते थे, उसे देखकर प्रेरित हुए। 8-9 साल की आयु में मिट्टी की मटकी पर चित्रकारी की और उसे खेत में लगाया, यह देखकर उनके नानाजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर उनके प्रोत्साहन से बाद में पेंटिंग और चित्रकारी करने लगे। तुअर की साटी से खिलौने बनाने लगे। 1962 में उनका परिवार उज्जैन चला गया। वहाँ मित्र बालकृष्ण शर्मा लकड़ी का काम करते थे,उनको देखकर काष्ठ शिल्प में रुचि हुई। मित्र प्रमोद गणपत्ये ने उज्जैन के कला मनीषी वाकणकर गुरुजी से मिलवाया। उन्होंने मार्गदर्शन किया।

1983 में सबसे पहली कृति के रूप में तीनों ने मिलकर सागवान की लकड़ी पर पेंगुइन पक्षी एक महीने में बनाया था। दिल्ली की प्रदर्शनी में इसे राष्ट्रपति अवार्ड मिला, लेकिन यह मेरे अकेले के नाम से नहीं था। घर की आर्थिक परेशानियाँ और इस कला में पैसा नहीं मिलने से 1992 में यह काम बंद कर 2010 तक कुछ नहीं किया। बेटे के आग्रह पर इसे फिर शुरू किया। बीते दस सालों में वे 60 कलाकृतियाँ बना चुके हैं।

अब देश-दुनिया के बाज़ारों में भी उनकी बनाई काष्ठ कृतियाँ अपनी धाक जमाएगी। नगर निगम, देवास और विक्रम कला भवन समिति मिलकर अब एक ऐसी वेबसाइट तैयार कर रही है, जो कलाकारों के हाथों का जादू देश-दुनिया के सामने रखेगी। दरअसल यह विचार बीते दिनों विक्रम कला भवन में आयोजित वरिष्ठ काष्ठ शिल्प कलाकार सोहन जोशी की कृतियों की प्रदर्शनी देखकर ही आया।

पहली बार किसी प्रदर्शनी में जोशी का यह काम बाहर आया तो नगर निगम और विक्रम कला भवन समिति ने तय किया कि यह काम देश-दुनिया तक पहुँचना चाहिए।

रंग प्रयोग: महाकवि बोधायन की क्लासिक कृति 'भगवदज्जुकीयम्'

सभी कलाओं का आधार है नाट्य शास्त्र

आचार्य भरतमुनि के नाट्य शास्त्र को महज पाण्डित्य परंपरा तक ठहरकर देखना, उसके साथ न्याय नहीं है। भारत ही नहीं, दुनिया की तमाम रंगमंचीय कलाओं में नाट्य शास्त्र के सिद्धांत प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में विद्यमान है। जनजातीय और लोक कलाओं से लेकर शास्त्र के नियमों में बंधे सभी कला रूप भरतमुनि की नाट्य दृष्टि से आलोकित हैं। कला अपने स्वरूप का विस्तार इस ग्रंथ के बिना नहीं कर सकती। ...इसी अवधारणा के केन्द्र में दो दिनों की विचार संगोष्ठी रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय में आयोजित की गयी। संयोजन संजय दुबे ने किया।

भाषा, मानविकी और उदार कला संकाय के उपक्रम संस्कृत, प्राच्य भाषा शिक्षण और भारतीय ज्ञान परम्परा केन्द्र के संयोजन में देश-विदेश के अग्रणी अध्येता, शोधार्थी तथा छात्र-छात्राएँ एकत्र हुए। संगोष्ठी का विषय था- ''नाट्य शास्त्र का विश्व कलाओं पर प्रभाव''। संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति और नाट्यशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान राधावल्लभ त्रिपाठी ने कहा कि नाट्यशास्त्र केवल 36 अध्यायों में रचित एक ग्रन्थ मात्र नहीं है बल्कि पूरी परम्परा का बीजारोपण करने वाला ग्रन्थ है। केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति रमाकांत पाण्डे ने अपने उद्बोधन में कहा कि नाट्य विधा भारतीय दृष्टिकोण में एक तमाशा नहीं है जिसे जो चाहे जहाँ ले जाये। नाट्यशास्त्र का प्रभाव आदिवासी लोककलाओं पर भी दिखाई देता है। शुभारंभ सत्र के अध्यक्ष कुलाधिपति संतोष चौबे ने कहा कि जीवन में रस प्रवाहित करते है नाटक। उन्होंने कहा कि कला अपने स्वपरूप का विस्तार इस ग्रन्थ के बिना नहीं कर सकती है। इस सत्र का संचालन टैगोर कला केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय ने किया। अन्य सत्रों में संगीता गुंदेचा, मेदनी होम्बल, भूमिकेश्वर, महेश चम्पक, संजय द्विवेदी, देवेन्द्र पाठक, स्मिता नायर, शुभ्रा वर्मा, अरूणेश शुक्ला आदि ने अपने शोध आलेख प्रस्तुत किये और सत्र को वैचारिक गति प्रदान की। डीन संगीता जौहरी ने आभार माना।

संस्कृत संगोष्ठी

भगवदज्जुकीयम् : भरतमुनि के नाट्यशास्त्रीय रंग विधान पर केन्द्रित इस नाट्य प्रस्तुति में लोकधर्मी एवं नाट्यधर्मी के अन्त:सम्बन्ध को पिरोने की कोशिश की गयी। आंगिक, वाचिक सात्विक और आहार्य अभिनय के माध्यम से लगभग सातवीं शताब्दी में बोधायन द्वारा रचे गये इस प्रथम प्रहसन को देखना परंपरा और आधुनिकता के बीच नए प्रयोग का अनुभव था। एक परिव्राजक और उनका शिष्य शाण्डिल्य योगविद्या सम्बन्धित चर्चा करते हुए उद्यान में प्रवेश करते हैं। यम पुरुष सर्प बनकर पुष्पावचय करती हुई वसन्तसेना गणिका के प्राणों का हरण कर लेता है। वसन्तसेना की चेटी शोक संतप्त गणिका की माता को यह समाचार सुनाने जाती है। वसन्तसेना के प्रेम में पागल शाण्डिल्य का विलाप क्रन्दन सुन परिव्राजक योगविद्या से बसन्तसेना के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। फलत: वसन्तसेना जीवित होकर परिव्राजक के समान व्यवहार करने लगती है। वसन्तसेना की माँ इसे विष का प्रभाव समझती है। अन्त में यम की सहायता से दोनों आत्माएँ अपने-अपने शरीर में चली जाती हैं। प्रहसन का सुखान्त होता है।

वेणु में गूँजा देश-राग

हवाओं में संगीत है/लहरों में संगीत है/संगीत है बारिश की रिमझिम में/ धड़कन में संगीत है/ साँसों में संगीत है/ संगीत है कुदरत के कण-कण में... इस सुरभीनी कविता के बीच जब बाँसुरी की मीठी तान गूँजी तो सारा मंज़र सुर, ताल और लयकारी की रूमानी आग़ोश में खो गया।

विश्व संगीत दिवस (21 जून) पर इस अनूठी महफ़िल की सौग़ात टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केंद्र ने दी। रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्व विद्यालय के कथा सभागार में आयोजित इस कला प्रसंग को विश्व प्रसिद्ध ध्रुपद गायक पद्मश्री पं. उमाकांत गुंदेचा की उपस्थिति ने गरिमा प्रदान की। युवा संगीतकार नितेश मांगरोले ने बाँसुरी पर पहाड़ी धुन के साथ ही बादल, बौछार और बयारों के मौसम को छूती बंदिशों और वतन परस्ती के तरानों का संगीत छेड़ते हुए माहौल को भाव रस की बौछारों से तर-बतर कर दिया। वेणु की अनुगूँजों में देश-राग को सुनना रोमांचकारी था।

नितेश मांगरोले

इस अवसर पर टैगोर कला केंद्र की प्रतिष्ठित पुरस्कृत पत्रिका 'रंग संवाद' के नवीन अंक का लोकार्पण भी हुआ। संगीत पर केन्द्रित हिंदी के सुपरिचित कवियों ऋतुराज, मंगलेश डबराल, प्रभात, सजीव सारथी, हेमंत देवलेकर आदि की रचनाओं का भावपूर्ण पाठ विनय उपाध्याय, संगीता जौहरी, मुदित श्रीवास्तव तथा आलम ने किया। इस अवसर पर उमाकांत गुंदेचा ने संगीत की सांस्कृतिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक अहमियत पर प्रकाश डालते हुए कहा कि हर व्यक्ति का जीवन संगीत के बिना अधूरा है। भारतीय संगीत की शक्ति को सारी दुनिया ने स्वीकार किया है। टैगोर विश्वविद्यालय के कुलपति ब्रह्मप्रकाश पेठिया, निदेशक अदिति वत्स, भाषा एवं मानविकी विभाग की डीन संगीता जौहरी तथा टैगोर कला केंद्र के निदेशक विनय उपाध्याय ने अतिथि कलाकारों का अभिनन्दन किया।

छतनारा-संवाद

छतनारा आर्ट होम में संवाद श्रंखला के अंतर्गत कवि-संस्कृतिकर्मी उदयन वाजपेयी ने साहित्य और कला से जुड़े संदर्भों पर अपना मंतव्य प्रकट किया। यह इस श्रृंखला की सातवीं कड़ी थी। निशांत उपाध्याय ने उदयन से उनकी कविताओं, कहानियों और उपन्यास से जुड़े प्रश्न पूछे। जीवन में साहित्य की भूमिका के बारे में पूछे जाने पर उदयन ने कहा कि साहित्य व्यक्ति को उसके विचारों और विवेक के प्रति सजग बनाता है। हर व्यक्ति अपनी-अपनी तरह से सजग होता है। बातचीत के दौरान कविता में शब्द और बिंब के चुनाव की प्रक्रिया पर भी बातचीत हुई। उदयन ने कहा कि कवि को रचते वक़्त अपने कवि धर्म के प्रति 'एथिकली करेक्ट' होना चाहिये। उदयन के बहुचर्चित उपन्यास 'क़यास' की रचना प्रक्रिया पर भी निशांत ने उनसे प्रश्न पूछे। उदयन ने सवाल के जवाब में श्रोताओं को उस उपन्यास की शुरुआती दिनों से लेकर उसकी सालों में पूरी हुई रचना यात्रा से अवगत कराया।

रचनात्मक संस्कारों की 'प्रेरणा'

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्व विद्यालय अमरकंटक के पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग तथा निराला सृजनपीठ, साहित्य अकादमी, म.प्र. संस्कृति परिषद, म. प्र. शासन, संस्कृति विभाग के संयुक्त तत्वावधान में युवा रचनाकारों की सृजनात्मक कार्यशाला 'प्रेरणा' का आयोजन किया गया।

जनजातीय विश्व विद्यालय के कुलपति प्रकाश मणि त्रिपाठी ने कहा कि साहित्य में शब्द का अर्थ संदर्भ के सापेक्ष होता है इसलिए प्रत्येक शब्द सन्दर्भ के साथ अपना अर्थ गढ़ लेता है। साहित्यकार वही है जो उसे पढ़ लेता है। इस तरह शब्द की यात्रा तय होती है। साहित्य अकादेमी के निदेशक विकास दवे ने 'प्रेरणा' के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आज तकनीकी युग में युवाओं को दिग्भ्रमित होने से बचाने की आवश्यकता है। उन्होंने युवाओं को संबोधित करते हुए कहा कि समाज एवं राष्ट्र को अपनी आँखों के सामने रखो आपको अपना लक्ष्य मिल जायेगा। विशिष्ट अतिथि श्रीराम परिहार, निदेशक, निराला सृजनपीठ, साहित्य अकादमी ने कहा कि आज आवश्यकता है कि हम राष्ट्र बोध को समझें। उन्होंने प्रतिभागियों को भाषा बोध के प्रति, पर्यावरण के प्रति, अपनी संस्कृति के प्रति सचेत होने का आग्रह किया। कार्यशाला को कवियित्री रीटा सिंह, साहित्यकार राकेश शर्मा, खेमसिंह उहेरिया, मनीषा शर्मा आदि ने भी संबोधित किया।

लोकभाषा गोष्ठी

''जिस तरह हमें माँ सबसे अधिक प्रिय है उसी तरह अपनी मातृ बोलियाँ भी प्रिय होना चाहिये। लोक भाषाओं को समृद्ध करने हेतु हमें हिन्दी से आगे जाकर सृजन करना होगा''। वरिष्ठ बुन्देली कवि किशन तिवारी ने यह बात मध्यप्रदेश लेखक संघ की प्रादेशिक लोकभाषा गोष्ठी में कही। अध्यक्षता करते हुए साहित्यकार राम वल्लभ आचार्य ने कहा कि जब तक लोकभाषाएँ जीवित रहेंगी तब तक हमारी परम्पराएँ भी जीवित रहेंगी। अतः इन्हें बचाना आवश्यक है। सारस्वत अतिथि प्रभु दयाल मिश्र का कहना था कि आधुनिकता की होड़ में समाज में अपसंस्कृति बढ़ रही है जिसका प्रतिकार हम लोकभाषाओं के माध्यम से ही कर सकते हैं। अतिथियों के इन वक्तव्यो को चरितार्थ करती रचनाओं की सौग़ात लिए प्रदेश के लोकांचलों की बोली-बानी का सौंधापन कवियों ने बिखेरा। गोष्ठी में दीपक चाकरे, राजेश रावल 'सुशील', देवदत्त द्विवेदी, प्रमोद मिश्रा, अशोक कुमार धमेनियाँ, अशोक चन्द्र दुबे 'अशोक', पूर्णिमा चतुर्वेदी तथा आशा पाण्डेय ने अपनी सरस रचनाओं का पाठ किया। गोष्ठी का संचालन प्रीति प्रवीण खरे ने किया।

जीवन के सबक देती हैं पदयात्राएँ

''पदयात्राओं सम्बन्धी पुरातन मान्यताएँ जहाँ हमें अपने देश अपने परिवेश को जानने समझने और सामाजिक एकरूपता को पाने का ज़रिया है वहीं ये हमें मानसिक और शारीरिक आरोग्य भी देती है''। ये विचार हिमालय के चारों धामों की साहसिक पदयात्रा कर लौटे पत्रकार, रंगकर्मी व रचनाधर्मी ओम द्विवेदी ने व्यक्त किये। वे आपले वाचनालय, इंदौर द्वारा उनके सम्मान में आयोजित कार्यक्रम को संबोधित कर रहे थे। उन्होंने कहा कि इस यात्रा में मिले परिक्रमावासियों से हुई चर्चाओं में उत्तराखंड, हिमालय की पदयात्राओं की महत्ता सुन इस यात्रा का मानस बना। अलौकिक अनुभूति का साक्षात्कार हुआ। तीन महीने तीन दिन की इस दुर्गम साहसिक यात्रा में पथ पर आई चुनौतियों और उस पर मिली विजय हमारी ईश्वरीय आस्थाओं को न सिर्फ़ दृढ़ करती है वरन प्रकृति की सदाशयता व मातृवत स्नेह आपको नतमस्तक करता है। संचालन श्रीति राशिनकर ने किया।

नाद और नाटक

चिल्ड्रन्स थिएटर अकादमी, भोपाल द्वारा दो नाटकों की प्रस्तुति 'अनुनाद' एवं 'नाटक में नाटक' अर्घ्य प्रेक्षागृह में की गई। अनुनाद में 25 बाल कलाकारों ने पंजाबी ढ़ोल, उड़ीसा का मादल, बनारस की पखावज, कोलकाता का बाटीझांज, यू.पी. का नगाड़ा, मंजीरा, नेपाली मंजीरा, लद्दाख का मंजीरा, बर्मा का कांग सहित तकरीबन 40 वाद्यों का वादन किया। आदिताल पर शंकर ने नृत्य किया। छाऊ में बजने वाली ताल का भी समावेश किया। इस प्रस्तुति में नाद ब्रह्म की परिकल्पना की गई। 'नाटक में नाटक' एक राजा और उसकी गुमसुम बेटी की कहानी का रंग प्रयोग थी। जीवन में नाटक की अहमियत को दर्शाता है यह नाटक।

पावस व्याख्यानमाला

संस्कृति और प्रकृति एक सत्य के दो नाम

साहित्य और संस्कृति के विविध पक्षों को लेकर नया वैचारिक पर्यावरण तैयार करने के उद्देश्य से आयोजित पावस व्याख्यानमाला ने अपना 27वाँ सोपान तय किया। भोपाल के हिन्दी भवन परिसर में चार दिनों तक चला यह साहित्यिक कुंभ इस बार अपनी प्रयोगधर्मिता में नई चेतना जगाता रहा। रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के सहयोग से म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने इस सारस्वत समारोह को संयोजित किया। हिन्दी के अग्रणी कवि-कथाकार, आलोचक पद्मश्री रमेशचन्द्र शाह का उनकी जीवन व्यापी साहित्य साधना के लिए अभिनंदन किया गया। पावस व्याख्यानमाला के स्वप्नदृष्टा हिन्दी सेवी कैलाशचन्द्र पंत तथा टैगोर वि.वि. के कुलाधिपति संतोष चौबे ने हिन्दी रचनाकारों की ज्येष्ठ, मझौली और युवा पीढ़ी के इस संगम को भविष्य में नया उन्मेष प्रदान करने का संकल्प व्यक्त किया। नई किताबों के विमोचन, फ़िल्म प्रदर्शन और पुस्तक प्रदर्शनी के बीच रचनात्मक परस्परता ने आत्मीय परिवेश बनाए रखा। पावस व्याख्यानमाला का उद्घाटन मध्यप्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष गिरीश गौतम व ऊषा ठाकुर सांस्कृतिक मंत्री, मध्यप्रदेश की उपस्थित में सम्पन्न हुआ।

वक्तव्य की श्रृंखला में कृष्णगोपाल मिश्र ने कहा कि भारतीय सांस्कृति विरासत को पहचानने के लिए वैदिक उपनिषदों में जाना होगा। श्रीराम परिहार ने कहा कि लघुता को महत्व देने की महत्ता भारतीय से संस्कृति में हमेशा से

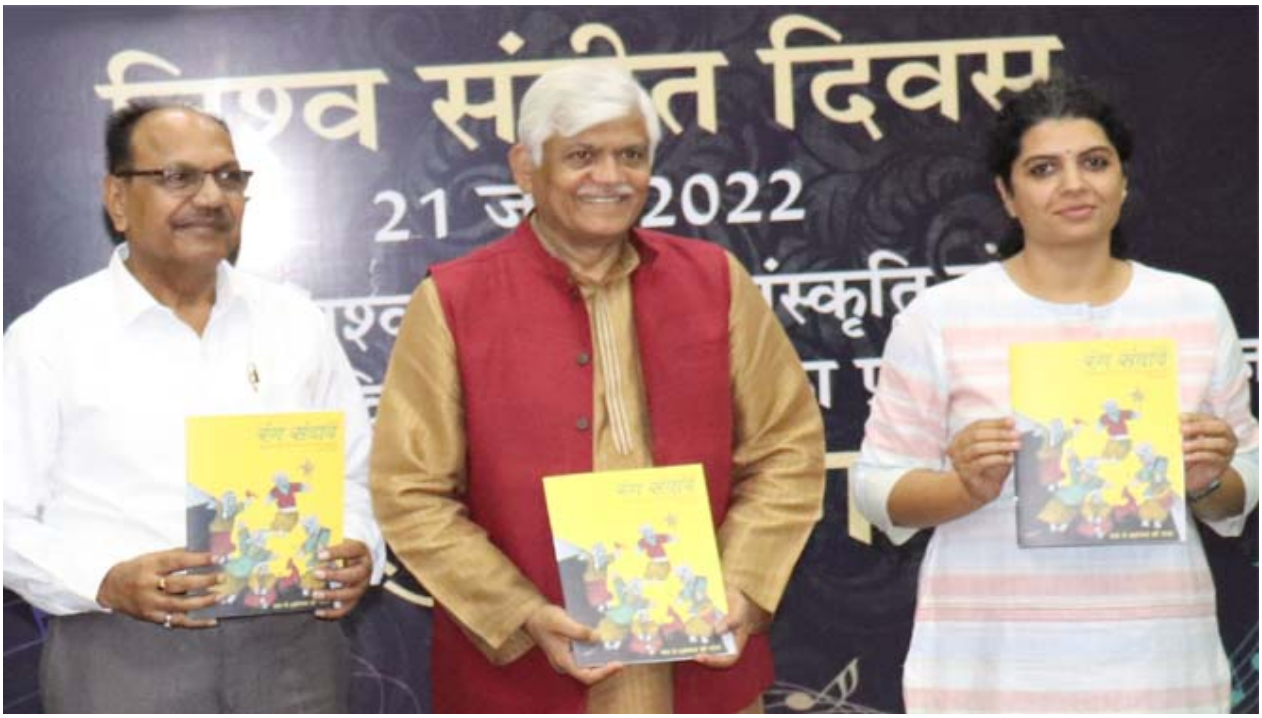

विश्व संगीत दिवस पर जारी हुआ 'रंग संवाद' का नया अंक। विश्व प्रसिद्ध ध्रुपद गायक पद्मश्री पं. उमाकांत गुंदेचा, टैगोर विश्व विद्यालय के कुलपति ब्रह्मप्रकाश पेठिया और निदेशक अदिति चतुर्वेदी वत्स

पद्मश्री रमेशचन्द्र शाह का अमृत अभिनंदन

रही है। संस्कृति और प्रकृति एक सत्य के दो नाम हैं। शशि भूषण पाण्डेय शितांशु के अनुसार संस्कृति प्रशांत है और ये ऋषियों की साधना का पुनर्विस्तार है। हमारी संस्कृति कर्मवाद का संदेश देती है न कि नियतिवाद का।

इस सत्र को सूर्यप्रकाश दीक्षित, शंकर शरण, संतोष चौबे इंदु शेखर तत्पुरुष, अच्युतानंद मिश्र, एस.पी. दुबे, कैलाशचंद्र पंत, सुरेंद्र बिहारी गोस्वामी और विजय दत्त श्रीधर ने भी संबोधित किया।

व्याख्यानमाला के दूसरे दिन दो प्रमुख विषयों पर चर्चाएँ हुईं। पहला सत्र- ''भारतीय भाषाओं के मध्य अंतर्संवाद'' के क्षेत्र पर आधारित रहा। इस अवसर पर देश के अन्य क्षेत्रों से आमंत्रित साहित्यकार व वक्ता उपस्थित रहे। जबकि दूसरे सत्र में शरद द्विवेदी, दर्शन पाण्डेय, शंकर शरण व मुकेश वर्मा ने 'उपभोक्तावादी विश्व में हिंदी का भविष्य' विषय पर अपने विचार प्रकट किए। सत्र की अध्यक्षता संतोष चौबे ने की। उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी का कहीं न कहीं संघर्ष हमें दिखाई देता है। इसके लिए सत्ता भी ज़िम्मेदार है।

एक अन्य सत्र में रंजना अरगड़े, मीनाक्षी जोशी, आनंद प्रकाश त्रिपाठी आदि ने भाषायी प्रेम और सांस्कृतिक एकता को अपने वक्तव्यों में रेखांकित किया।

तृतीय दिवस का पहला सत्र 'ज्ञान विषयों में हिंदी लेखन' पर आधारित रहा। जिसमें नीरजा माधव, प्रमोद भार्गव, रामेश्वर मिश्र पंकज एवं संजय द्विवेदी ने मुख्य वक्ता के रूप में अपनी बात रखी। सत्र के अध्यक्ष प्रो. रमेशचंद्र शाह रहे। वहीं संचालक की भूमिका प्रतिभा गुर्जर ने अदा की। द्वितीय सत्र में वक्ता के रूप में नरेंद्र मिश्र एवं जवाहर कर्णावट उपस्थित रहे। कार्यक्रम की अध्यक्षता अंबिकादत्त शर्मा ने की। वक्ताओं ने ''नई शिक्षा नीति में भारतीय भाषाओं की संभावनाएँ'' विषय पर विश्लेषण प्रस्तुत किया उसके अलग-अलग पक्षों पर विचार प्रस्तुत किए। सत्र का संचालन ललिता त्रिपाठी ने किया। साथ ही कैलिफोर्निया, अमेरिका से आयोजन में सम्मिलित हुईं रचनाकार अंशु जौहरी की किताब 'जिसकी जड़ें नहीं' का लोकार्पण किया गया। अंशु जौहरी ने संग्रह से 'सुरंग भरा पहाड़' नामक कहानी का पाठ भी किया।

अंतिम दिन प्रथम सत्र ''हिंदी आलोचना में सांस्कृतिक नवोन्मेष'' विषय पर आधारित रहा। अरुणेश शुक्ला, इंदुशेखर, करुणाशंकर एवं गोपाल मिश्र ने अपने विचार रखे। वहीं द्वितीय सत्र ''महिला लेखन: सशक्तिकरण की दृष्टि'' विषय पर आधारित रहा। वक्ता नीरज खरे, ललित आंबा, उर्मिला शिरीष एवं सूर्यकांत नागर रहे। सत्र की अध्यक्षता प्रोफेसर एस शेषा रत्नम ने की तथा संचालन अनीता सक्सेना द्वारा किया गया। - **दीपक पगारे**

वनमाली सृजन केन्द्रों का
राष्ट्रीय अधिवेशन

सुप्रतिष्ठित कथाकार, शिक्षाविद् एवं विचारक जगन्नाथ प्रसाद चौबे वनमाली जी की 110वीं जयंती के अवसर पर वनमाली सृजन केन्द्रों के दो दिवसीय 'तृतीय राष्ट्रीय सम्मेलन' का भव्य शुभारंभ रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के शारदा सभागार में हुआ। सुदूर अँचलों, गाँव-कस्बों में कला, साहित्य, संस्कृति, सामाजिक सरोकारों की गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखंड, राजस्थान, गुजरात, उत्तराखंड, महाराष्ट्र, दिल्ली, उत्तर प्रदेश आदि में स्थापित सैकड़ों वनमाली सृजन केंद्रों के अध्यक्षों, संयोजकों एवं रचनाकार सदस्यों ने रचनात्मक भागीदारी की। वनमालीजी के कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर केंद्रित लघु फ़िल्म का प्रदर्शन भी किया गया।

वनमाली सृजन पीठ के राष्ट्रीय अध्यक्ष संतोष चौबे ने इस अवसर पर अपने उद्बोधन में कहा कि हमारी भाषा सुपर डोमेन है। विदेशों में आज हिंदी पर बहुत काम हो रहा है। विदेशी लेखकों की रुचि अब भारत की संस्कृति और साहित्य में लगातार बढ़ती जा रही है। साहित्य एक परंपरा है। विज्ञान कथाओं पर भी हम काम कर रहे हैं। हमने ये महसूस किया कि साहित्य और पुस्तकों के प्रति लोगों की रुचि जागृत करने की जरुरत है। पुस्तक यात्रा हमारी मूल अवधारणा है जिसके माध्यम से पुस्तकें पुस्तकालय से निकलकर लोगों तक पहुँच रही हैं। विभिन्न समूहों की चर्चाओं के बीच नए वैचारिक संवाद के नए प्रयोगों पर प्रकाश डाला गया।

'वनमालीजी' की 'दस कहानियाँ' पुस्तक सहित विश्व रंग का पोस्टर, 'वनमाली कथा', 'विश्वरंग', 'रंग संवाद', 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए', 'वनमाली वार्ता' पत्रिकाएँ, वनमाली सृजनपीठ का ब्रोशर, आईसेक्ट पब्लिकेशन के नवीन कैटलॉग एवं वनमाली सृजन पीठ, बुरहानपुर के अध्यक्ष, संतोष परिहार की नई पुस्तक 'एक महल हो सपनों का' का लोकार्पण अतिथियों द्वारा किया गया। संचालन मानविकी विभाग की डीन संगीता जौहरी और युवा आलोचक अरुणेश शुक्ल ने किया।

इस अवसर पर वरिष्ठ कथाकार एवं वनमाली सृजन पीठ, बिलासपुर के अध्यक्ष सतीश जायसवाल के मुख्य आतिथ्य एवं वरिष्ठ कवि बलराम गुमास्ता और इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए की कार्यकारी संपादक विनीता चौबे की अध्यक्षता में आयोजित कविता-पाठ में देशभर के वनमाली सृजन पीठ एवं सृजन केन्द्रों के प्रतिनिधि रचनाकारों ने अपनी कविताएँ सुनाई। सुधीर सक्सेना ने 'वनमालीजी' के संपूर्ण जीवन पर केन्द्रित रचना का भावपूर्ण पाठ किया। बुंदेली ग़ज़ल के

महत्वपूर्ण हस्ताक्षर वरिष्ठ रचनाकार महेश कटारे 'सुगम' ने बुंदेली ग़ज़ल, विमल शर्मा (वैशाली) ने सावन का गीत 'सावन आ गया है', मनोहर बाथम (हजारीबाग) 'न सुरों की सरहदें न पंछियों की सरहदें', 'कीचड़' 'आतंकी का मकान देख लो', आशीष दशोत्तर (रतलाम) 'कभी ऐसा हो' 'उसकी पसंद का चेहरा, 'खामोशी की आवाज़', संजय सिंह राठौर 'बरसाती नदियाँ', मौसमी परिहार ने 'सबके अपने-अपने सच हैं जस के तस मुट्ठी भर आसमान मनभर उड़ान' 'पांच तत्व' 'तुमने जब छुआ', विक्रांत भट्ट 'चाँद पर पानी' 'पहले से ज्यादा आगे', राजेन्द्र शर्मा (मुंबई), ने दोहें, स्वाति तिवारी (इंदौर), संतोष जैन (घोड़ाडोंगरी) ने अपनी ग़ज़ल जो बात इधर है वो उधर है कि नहीं है , महबूब तुझे कोई ख़बर है कि नहीं है, ब्रज श्रीवास्तव (विदिशा), ने कविता, गोविंद शर्मा (खंडवा) ने 'बोंजामिन मोलाइस, कविता, मनोज शुक्ला हिंदुस्तानी (शाहपुर), ने नदी का गीत, ओम यादव (देवास), ने मैं नर्मदा का नीर हूँ, लियाकत खोकर (लखनऊ) ने ग़ज़ल, मिथिलेश राय (शहडोल) ने कविता मकड़ी, सफ़िया सिद्धकी (अलीगढ़) ने ग़ज़ल, सीमा शाहजी (थांदला), ने 'झाबुआ की आदिवासी महिलाएँ' कविता, मंजुषा मन (बलौदाबाजार) ने साईकिल चलाती लड़कियाँ एवं नमक रचना का बेहतरीन पाठ किया। कविता-पाठ का संचालन वरिष्ठ साहित्यकार गोविंद शर्मा ने किया। आभार सृजन पीठ के अध्यक्ष मुकेश वर्मा ने व्यक्त किया।

बंगभूमि पर हिन्दी के रंग-प्रयोग

बंगाल की रंगभूमि (कोलकाता) पर यह हिन्दी नाटकों का उत्सव था। तीन हिंदी नाटकों का मंचन हुआ। पहला 'जमीला' (रंगशिल्पी), दूसरा 'दयाशंकर की डायरी' (स्पर्श) और तीसरा था 'अभी रात बाकी है' (रंगकर्मी)। 'जमीला' किर्गिस्तान के मशहूर लेखक चिंगिज आइतामातोव के वर्ष 1958 में लिखे उपन्यास पर आधारित था। 'दयाशंकर की डायरी' नादिरा ज़हीर बब्बर का लिखा एकल नाटक है और 'अभी रात बाक़ी है' साहित्यकार जयंत पवार के एक मशहूर मराठी नाटक (अधांतर) पर आधारित था। नए प्रयोगों और शैलियों में ढले इन नाटकों को देखना एक तरह से समकालीन रंग परिवेश की नई धड़कनों को सुनने का अवसर भी था।

जमीला : 'जमीला' नाटक की एक बड़ी ख़ूबी यह भी है कि एक-दो को छोड़कर इस नाटक के बाक़ी सभी कलाकार बांग्लाभाषी थे, जिनके उर्दू ज़ुबान के उच्चारण और उनके अभिनय को देखकर 'रंगशिल्पी' और 'जमीला' के निर्देशक प्लावन बसु और पूरी टीम को सैल्यूट करने की इच्छा होती थी। 'जमीला' उपन्यास को किर्गिस्तान के मशहूर लेखक चिंगिज आइतामातोव ने वर्ष 1958 में लिखा था। 'जमीला' नाटक में जमीला बनी कल्पना झा, देवर सैयद के किरदार में प्लावन बसु और दानियर की भूमिका में सुशील कांति का अभिनय उल्लेखनीय रहा। भावुक कर देने वाला है। प्लावन बसु 'जमीला' के निर्देशक भी हैं और इस नाटक के सूत्रधार भी। एक पेंटर की निगाह से वे नाटक के बीच-बीच में 'जमीला' की कथा भी सुनाते जाते हैं और देवर सैयद का किरदार भी।

'दयाशंकर की डायरी': 'दयाशंकर की डायरी' असल में उत्तरप्रदेश के एक छोटे-से शहर फ़र्रुख़ाबाद के एक युवक की कहानी है, जो अपने सपने को पूरा करने के लिए बंबई आता है। वह अपने ख़्वाब के शहर में पहुँच तो जाता है, लेकिन एक सरकारी ऑफिस में क्लर्क बनकर रह जाता है। कुछ माह के बाद वह अपनी नौकरी से हताश हो जाता है और बंबई की भाग-दौड़ भरी ज़िंदगी से थककर कल्पनाओं में जीने लगता है। धीरे-धीरे वास्तविकता से उसका संपर्क नहीं रहता। सपने में वह एक विधायक की बेटी सोनिया से प्रेम करने लगता है। 'सपने तो आखिर सपने' ही होते हैं। दयाशंकर उस सपने में कहीं का नहीं रहता। आख़िर में वह अपने आप को खो बैठता है। टेलीविजन और फ़िल्मों में सक्रिय भूमिका निभाने वाले पुण्य दर्शन गुप्ता बुनियादी तौर पर नाटक की दुनिया के आदमी हैं। आपको बताते चलें कि 'दयाशंकर की डायरी' वह नाटक है, जिससे अभिनेता आशीष विद्यार्थी का कैरियर बना।

'अभी रात बाक़ी है': नाटक लिखना, उसे दूसरी जुबान में भाषांतरित करना और लिखे हुए नाटक को मंच पर उतारना- तीनों ही काम तपस्या की तरह है। अगर कोई यह जोखिम उठाता है, तो सचमुच वह सलाम करने के काबिल हैं। मशहूर नाट्यकर्मी दिवंगत ऊषा गांगुली द्वारा निर्मित और स्थापित

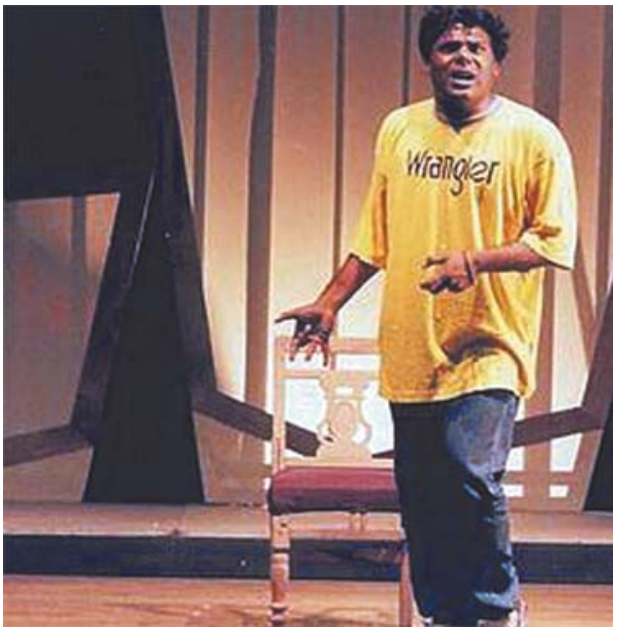

'रंगकर्मी' का नया नाटक 'अभी रात बाक़ी है' कुछ-कुछ इसी तरह का है। कोलकाता के रवींद्र सदन प्रेक्षागृह में पिछले दिनों इस नाटक का चतुर्थ शो हुआ। भारी बारिश के बावजूद दर्शकों ने बेहद सुकून से इस हिंदी नाटक को देखा और 'रंगकर्मी' के कलाकारों को सैल्यूट करते हुए बाहर निकले। लगा जैसे ऊषा गांगुली कहीं गई नहीं, बल्कि हमारे बीच ही यहीं कहीं बैठी इस नाटक को देख रही हैं।

'अभी रात बाक़ी है' दरअसल, मराठी का चर्चित ही नहीं, माइलस्टोन माना-जाना वाला नाटक है। इस नाटक का मूल नाम है 'अधांतर' यानी 'सस्पेंडेड हॉफवे'। जयंत पवार ने इस नाटक (अधांतर) को लिखा है। जयंत पवार के 'अधांतर' पर मराठी भाषा में फ़िल्म भी बन चुकी हैं। हिंदी और मराठी सिनेमा के जाने-माने फिल्मकार महेश मांजरेकर ने यह बनाई है। 'अभी रात बाक़ी है' यही कोई पौने दो घंटे का प्ले है। आप इस नाटक को एकटक देख सकते हैं। इस नाटक की यही मूल ताक़त है। तीन बेटों, एक बेटी, बेटी का पति और इन सबके बीच एक विधवा और अपंग माँ के इर्द-गिर्द यह नाटक केंद्रित है। अस्सी के दशक में बंबई की कपड़ा मिलों में एक लंबी हड़ताल हुई थी दत्ता सामंत के नेतृत्व में। यह नाटक उसी पर आधारित है।

नाटक के डिज़ाइन और डायरेक्शन के लिए सौती चक्र वर्ती बधाई के पात्र हैं। प्रकाश-सज्जा के लिए सौमेन चक्रवर्ती धन्यवाद के लायक है। हिन्दी के रंगमंच को बंगाल की भूमि पर नवाचार के साथ देखते हुए भला सा लगता है कि यहाँ के दर्शकों ने अपने पारंपरिक नाट्य आस्वाद और अभिरूचि में हिन्दी के रंग संस्कारों में ढले प्रयोगों को भी भरपूर सराहा है। 'अभी रात बाक़ी है' देखते हुए अनायास ही दिवंगत रंगकर्मी उषा गांगुली की याद कौधती है, जिन्होंने हिन्दी प्रदेश से कोलकाता में प्रवेश करते हुए हिन्दी रंगमंच को पूरी उत्साह और निष्ठा से सींचा। 'रंगकर्मी' जैसा सक्रिय नाट्य समूह बनाकर नई पौंध को हिन्दी नाटकों के लिए तैयार किया।

-जयनारायण प्रसाद

समावेशी पहल
पुस्तक पर्व

किताबों की कारोबारी दुनिया में पिचहत्तर साल का सफ़र पार करते हुए दिल्ली के राजकमल प्रकाशन ने हाल ही में भोपाल में दस्तक दी। इस अमृत क्षण को पुस्तक पर्व के रूप में मनाते हुए लेखकों को भी संवाद की जगह दी गई। रचना पाठ तो हुए ही, चुनिंदा कृतियों पर चर्चा हुई और रचनात्मक विषयों पर गंभीर विमर्श भी हुआ। दिलचस्प यह कि साहित्य पर कोरी और एकांगी बहस से हटकर एक शाम साहित्य और कलाओं के अंतर-संबंधों पर भी वार्ता हुई। यह एक ऐसा विषय है जिस पर अमूमन कम ही सोचा, कहा और लिखा गया है। जबकि भारत में ज्ञान की मौखिक और लिखित परंपरा साहित्य और कला के गहरे अन्तर्सम्बन्धों को जीते हुए अभिव्यक्ति के ललित आयाम रचती रही है। दुर्भाग्य ही है कि साहित्य और कला के आधुनिक शिविरों में इस परस्परता के महत्व या गूढ़ अर्थों पर बहस-मुबाहिस की कोई जगह नहीं। पुस्तक पर्व ने इस जड़ता को तोड़ा।

यह उल्लेख यहाँ ग़ैर ज़रूरी नहीं कि उपन्यास 'रेत समाधि' का प्रकाशन राजकमल ने ही किया है, जिसे इस साल बुकर इन्टरनेशनल अवार्ड के लिए चुना गया है। गीताश्री की इस हिंदी किताब का अंग्रेजी अनुवाद डेज़ी रॉकवेल ने किया है। बहरहाल साहित्य और कला की रचनात्मक आपसदारी पर संवाद के लिए पेश आये संतोष चौबे। हिंदी के चर्चित और ख़्यात रचनाकार-कवि तो वे हैं ही, विज्ञान और संस्कृति के क्षेत्र में भी उनकी उल्लेखनीय उपलब्धियाँ रही हैं। एक बड़ा कीर्तिमान तो 'विश्वरंग' महोत्सव का ही है, जिसने विगत तीन वर्षों में दुनिया के तीस से भी ज़्यादा देशों को विश्वबंधुत्व की भावना से प्रेरित होकर साहित्य-संस्कृति की संधि पर एकजुट होने के लिए प्रोत्साहित किया है। 'विश्वरंग' चौबे की ही मूल संकल्पना की परिणति है।

बहरहाल यही वह सन्दर्भ है जहाँ साहित्य और कलाओं के मर्म तथा उनके रचनात्मक विनिमय के रसायन को गहरे में जाकर देखने की दृष्टि पाते रहे हैं। उनका अपना रचनात्मक फ़लक भी इस निगाह की तस्दीक करता है। विषय के पक्ष में कथाकार मुकेश वर्मा, कवि बलराम गुमास्ता और कुणाल सिंह के सवालों पर अपने तर्क रखते हुए चौबे ने कहा साहित्य और कामों के बीच बुनियादी सम्बन्ध अपनी रचनात्मकता में बहुत ही विशिष्ट रहा है। संगीत का साहित्य और चित्रकला से, साहित्य, संगीत, और चित्रकला का रंगमंच से, चित्रकला का संगीत से गहरा ताल्लुक़ है। लालित्य की संस्कृति जिसमें रास, भाव और सौंदर्यबोध को हम लक्ष्य करते हैं, वह इसी परस्परता की उपज है। चौबे ने साहित्य और कला के साथ विज्ञान के संयोग की भी चर्चा की। कहा कि कला के प्रयोग को बहुत साफ़ तौर पर देखा जा सकता है। ध्वनि का विज्ञान योग से जुड़ता है जिसे नादयोग कहते हैं।

पुस्तक पर्व में रमेशचन्द्र शाह, कैलाशचन्द्र पंत, गोविन्द मिश्र, राजेश जोशी, ज्ञान चतुर्वेदी, राम प्रकाश, उर्मिला शिरीष, राजेन्द्र शर्मा, अनिल करमेले, सविता भार्गव, नीलेश रघुवंशी, साधना बलवटे, गीत चतुर्वेदी, पल्लवी त्रिवेदी, रक्षा दुबे चौबे, मलय जैन, वसंत सगरगाए, मुदित श्रीवास्तव आदि ने शिरकत की।

जो देखा–भोगा सो लिखा

कथाकार उषा किरण खान का अभिनंदन

मैं हिन्दी पट्टी के गाँव का दुख-सुख कहने वाली लेखिका हूँ। मैंने कोसी नदी के किनारे बसर करने वाले दलितों का दर्द जिया है। इसलिए जो देखा-भोगा, सो लिखा। इस साफ़गोई के साथ हिन्दी की बहुचर्चित कथाकार उषा किरण खान भोपाल की लेखक और पाठक बिरादरी से एक आयोजन में पेश आयीं। वनमाली सृजन पीठ भोपाल के बुलावे पर उषाजी का अभिनंदन करने कथाकार शशांक, उर्मिला शिरीष और पंकज सुबीर भी शरीक हुए। कवि-कथाकार और सृजनपीठ के राष्ट्रीय अध्यक्ष संतोष चौबे, कथाकार व सृजनपीठ के स्थानीय अध्यक्ष मुकेश वर्मा के साथ उनकी सहयोगी टीम में वरिष्ठ कवि बलराम गुमास्ता, टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय, 'वनमाली कथा' के संपादक कुणाल सिंह, आलोचक अरूणेश आदि ने भी अपनी रचनात्मक उपस्थिति दर्ज की। स्कोप कॉलेज के प्राचार्य डा. राघव ने सभी अतिथियों का स्वागत किया।

पद्मश्री उषा किरण खान ने अपने उद्बोधन में कहा कि मेरे जीवन और लेखन में मनुष्यता के आपसी रिश्तों का बहुत गहरा महत्व है। इन संबंधों में कुछ सही या ग़लत होता है तो उसकी कोई न कोई वजह ज़रूर होती है। मेरी कहानियाँ समाज में घटित भयावह सत्य को उजागर करती है। कारणों की पड़ताल करती है। मैं हिंदी पट्टी की गाँव की बात कहने वाली लेखिका हूँ। कोसी नदी के दोनों किनारों पर जीवन बसर करने वाले गरीब दलित लोगों के सुख-दु:ख क्या है, इनसे सभी का परिचय होना जरूरी है।' संतोष चौबे ने कहा कि उषा किरण की कहानियों में भारतीय ग्रामीण समाज बहुत शिद्दत से उपस्थित रहता है। उषा जी यथार्थवाद की सशक्त प्रतिनिधि कथाकार है। उनकी रचनाएँ हमें अपनी स्मृतियों में ले जाती है। शशांक ने अपने उद्बोधन में कहा कि वास्तविक प्रेम की आदिम इच्छाओं को बचाए रखने का बड़ा काम उषा किरण जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है। मुकेश वर्मा ने उषा को हिंदी और मैथिली में समान रूप से कहानियाँ लिखने वाली लेखिका बताया। उर्मिला शिरीष के अनुसार उषा जी नये रचनकारों को प्रोत्साहित करने वाली विशिष्ट लेखिका हैं।

परंपरा के रंग

मध्यप्रदेश के निमाड़ लोक अंचल के पारंपरिक चित्रांकन 'जिरोती' पर केन्द्रित एक कार्यशाला महेश्वर में संपन्न हुई। इस रचनात्मक गतिविधि में तीस से भी अधिक युवा और प्रौढ़ महिला प्रतिभागियों ने चित्रण किया। डॉ. सी.वी.रामन् विश्व विद्यालय, खंडवा के कुलगुरु अरुण जोशी, प्रतिकुलगुरु शहजाद कुरैशी, कुलसचिव रवि चतुर्वेदी, निमाड़ लोक कला एवं संस्कृति केन्द्र के निदेशक श्रीराम परिहार तथा गोविंद शर्मा ने लोक देवी जिरोती, लोक कला, आज़ादी का अमृत महोत्सव, निमाड़ की और भारत की लोक संस्कृति पर संक्षिप्त वक्तव्य दिये।

चार राज्यों में क़ाफ़िला किताबों का

'विश्वरंग पुस्तक यात्रा'

आधुनिक संचार माध्यमों की तमाम चुनौतियों के बीच जनता को किताबों की दुनिया में लौट आने का एक विशाल अभियान 'विश्व रंग पुस्तक यात्रा' की शक्ल ले रहा है। रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र तथा वनमाली सृजन पीठ की पहल पर भोपाल, बिलासपुर, खंडवा, वैशाली और हजारीबाग में एक साथ 11 पुस्तक यात्राएँ शहरों, क़स्बों, गाँवों से गुज़रते हुए स्थानीय लोगों से पुस्तक संस्कृति से जुड़ने का आह्वान करेगी।

विभिन्न शैक्षणिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संस्थाओं की साझेदारी में यह सामूहिक अभियान एक नई सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक बन रहा है। विश्व रंग पुस्तक यात्रा का शुभारंभ 22 सितंबर 2022 को विशेष आमंत्रित अतिथि द्वारा किया गया जाएगा। समापन 30 सितंबर को समारोह पूर्वक होगा। यह विराट गतिविधि आज़ादी के अमृत महोत्सव एवं पुस्तक संस्कृति को समर्पित है तथा इसी दृष्टिकोण के साथ स्थानीय पाठक और लेखकों को जोड़ने की उत्सवी पहल होगी। इस रचनात्मक अभियान में सैकड़ों स्थानीय कला, साहित्य, संस्कृति की सहयोगी संस्थाओं का सहयोग प्राप्त हो रहा है।

वृहद स्तर पर संयोजित हो रही इस विश्व रंग पुस्तक यात्रा के परिप्रेक्ष्य में नौवीं से बारहवीं तक के स्कूली और महाविद्यालय स्तर पर अध्ययन कर रहे छात्र-छात्राओं के लिए स्वरचित कविता पाठ, कहानी पाठ तथा चित्रकला प्रतियोगिताएँ भी आयोजित होगी। विजेता प्रतिभागियों को 30 सितंबर को समारोह पूर्वक पुरस्कृत किया जाएगा। पुस्तक यात्रा के दौरान दानदाताओं से पुस्तक संग्रहण का कार्य भी किया जाएगा। संग्रहित पुस्तकें ज़रूरतमंद शिक्षण संस्थान को भेंट की जाएगी। किताबों से सुसज्जित यात्रा वाहन में उपलब्ध पुस्तके विक्रय के लिए भी उपलब्ध रहेंगी, जिन्हें पुस्तक प्रेमी विशेष रियायती दरों में ख़रीद सकेंगे। यात्रा के दौरान आज़ादी के नायक, लेखक तथा वैज्ञानिकों की पोस्टर प्रदर्शनी विशेष आकर्षण का केन्द्र होगी। किताबों की दुनिया से जुड़े विविध विषयों और विचारों पर केन्द्रित कविताओं का संग्रह 'जीवन का उजियारा पुस्तक' भी टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र द्वारा संपादित किया गया है। इसे आईसेक्ट प्रकाशन भोपाल ने प्रकाशित किया गया।

उल्लेखनीय है कि रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय भारत का एक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय है। इसकी स्थापना भारत के प्रथम नोबेल पुरस्कार विजेता कवि गुरुदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर के नाम से हुई है। आईसेक्ट समूह द्वारा भोपाल, बिलासपुर, खंडवा, वैशाली और हजारीबाग में संचालित विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी रहते हुए भारतीय एवं वैश्विक स्तर पर साहित्य, संस्कृति, कला और शिक्षा की साझेदारी की तरह नई छात्र पीढ़ी और जन समुदाय संस्कारित करने की दिशा में सक्रिय विशेष रूप से सक्रिय है।

रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय वर्ष 2019 से प्रतिवर्ष विश्व रंग टैगोर अंतर्राष्ट्रीय साहित्य एवं कला महोत्सव का आयोजन विश्व के तीस से अधिक देशों में भव्य पैमाने पर करता आ रहा है। विश्व रंग पुस्तक यात्रा इसी अनूठे महोत्सव की महत्वपूर्ण कड़ी है।

'विश्व रंग' पुस्तक यात्राओं को लोक व्यापी बनाने के लिए कई बहुआयामी कार्यक्रम होंगे। इस दौरान ज्ञान-विज्ञान तथा अन्य उपयोगी साहित्यिक किताबों, पोस्टरों आदि से सुसज्जित एक वाहन होगा जो पुस्तक प्रेमियों के साथ रैली की शक्ल में विभिन्न गांवों कस्बों से गुजरता निर्धारित स्थानों पर ठहरेगा। चयनित स्कूलों में इस 'विश्व रंग' पुस्तक यात्रा के तारतम्य में छात्र-छात्राएँ, शिक्षक तथा आमंत्रित लेखकों के बीच पुस्तकों की गौरवशाली परंपरा तथा आंचलिक सांस्कृतिक विरासत पर केंद्रित कार्यक्रम होंगे। स्थानीय और अन्य प्रतिष्ठित अतिथि लेखकों का रचना-पाठ तथा विद्यार्थियों के बीच प्रश्नोत्तरी (क्विज) के रोचक आयोजन भी होंगे। - **संजय सिंह राठौर**

किताबें

सिनेमा और मौसिक़ी के अज़ीम किरदार

सितारे का सफ़र

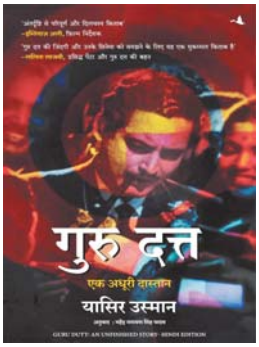

यह एक अधूरी ज़िंदगी की दिलचस्प, सावधानीपूर्वक शोध की हुई और मार्मिक तस्वीर है जिसमें एक तरफ़ा प्यार, अनसुलझे रिश्तों और बेजोड़ सिनेमाई प्रतिभा की भूमिका रही है। ...गुरु दत्त की फ़िल्मों में कुछ ऐसे नाम शामिल हैं जिन्हें लंबे समय से भारत में अब तक बनी सर्वश्रेष्ठ फ़िल्मों में शुमार किया जाता है। उनकी अमर फ़िल्म प्यासा (1957) को 2005 की टाइम मैग्जीन की सर्वकालीन 100 महान फ़िल्मों में शामिल किया गया था। वे भारतीय सिनेमा के लिए डॉन हुआन और नीत्शे का संगम थे। उनकी ज़िंदगी के बारे में काफ़ी कम ज्ञात है। इस विस्तृत विवरण में अकेले, मुसीबतज़दा व्यक्ति की जीवन यात्रा के बारे में बताया गया है जिसे जीवन भर विपरीत हालातों का सामना करना पड़ा। बाल-प्रतिभा गुरु दत्त ने अपनी शुरुआत महान उदय शंकर से नृत्य सीखकर की थी और बाद में गैर-परंपरागत फ़िल्मकार के रूप में उन्होंने कलात्मक संतुष्टि से समझौता किए बिना, अपेक्षित व्यावसायिक सफलता हासिल की। उन्होंने अपने दम पर फ़िल्म-स्टूडियो चलाया तथा निर्माता, निर्देशक, अभिनेता और फ़ाइनेंसर तक की सभी भूमिकाएँ निभाईं। बेस्टसेलिंग बॉलीवुड जीवनी लेखक यासिर उस्मान ने एक विलक्षण सितारे की इस प्रामाणिक जीवनी में गुरु दत्त से जुड़ी बातों की खोज की है। देव आनंद, वहीदा रहमान, जॉनी वॉकर, एस.डी. बर्मन जैसे क़रीबी दोस्तों और सहयोगियों और सबसे महत्वपूर्ण रूप से गुरु की बहन तथा प्रसिद्ध चित्रकार ललिता लाजमी के हवाले से उनके छोटे लेकिन दयालु, महत्वाकांक्षी और अंततः दुखद जीवन को इस पुस्तक में दर्शाया गया है।

आवाज़ के अफ़साने

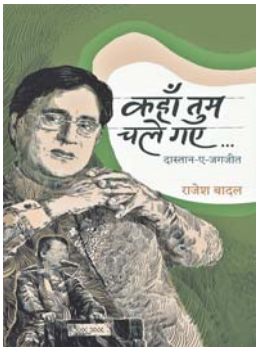

हिंदुस्तान की आज़ादी के साथ एक राजस्थानी सिख बच्चे का सफ़र शुरू होता है। उसकी साँसों से सरगम फूटती है। उसके शब्द और कीर्तन, सुनने वालों को रूहानियत से भरे अलग लोक में ले जाते। जब वह पक्की रागदारी में गुरबानी का संदेश श्रद्धालुओं तक पहुँचाता, तो वे बालक जगमोहन के चेहरे पर एक तेज देखते। उसके पिता के गुरूजी ने कहा, ''यह जग को जीतेगा।'' यही बालक सरदार जगमोहन नौजवान हुआ तो अपने सुरों को शक्ल देने के लिए एक दिन ख़ामोशी से घर और पढ़ाई छोड़कर मायानगरी मुंबई चला गया। अपने संकल्प, समर्पण और संगीत साधना के बल पर देखते ही देखते ग़ज़ल सम्राट बन बैठा। आज दुनिया भर में उसके करोड़ों दीवाने हैं। हम सब उसे जगजीत सिंह के नाम से जानते हैं। उसने ग़ज़ल को महफ़िलों से निकालकर घर-घर पहुँचा दिया। पढ़िए हम सबके लाड़ले जगजीत की ज़िंदगी के सफ़र की वो समूची दास्तान, जिसे शायद ही कोई जानता हो। हिंदी में पहली बार प्रस्तुत है इस बेजोड़ कलाकार की जीवन गाथा। वो घटनाएँ, जो आप पहली बार जानेंगे। वो क़िस्से, जो अब तक सामने नहीं आए। वो प्रसंग, जो स्वयं जगजीत सिंह ने सुनाए। जगजीत सिंह की कहानी- वरिष्ठ पत्रकार, लेखक और बायोपिक फ़िल्म निर्माता-निर्देशक राजेश बादल की कलम से।

सौग़ात

- **रवीन्द्रनाथ टैगोर, चित्रों और शब्दों में जीवन कथा**
  लेखक: नित्यप्रिय घोष
  अनुवाद: श्रीकान्त अस्थाना
  मूल्य: 995/- रू.
  प्रकाशक: नियोगी बुक्स, नई दिल्ली
  संपर्क: 911126816301, 26818960

- **फील्ड मार्शल सैम मानेकशॉ, अपने समय का चमकता सितारा**
  लेखक: ब्रिगेडियर बेहराम एम. पंथकी और ज़िनोब्या पंथकी
  मूल्य: 895/- रू.
  प्रकाशक: नियोगी बुक्स, नई दिल्ली
  संपर्क: 911126816301, 26818960

- **गुरुदत्त- एक अधूरी दास्तान**
  लेखक: यासिर उस्मान
  हिंदी अनुवाद: महेंद्र नारायण सिंह यादव
  मूल्य: 499/- रू.
  प्रकाशक: मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल
  संपर्क: 0755-4240 340

- **कहाँ तुम चले गए**
  लेखक: राजेश बादल
  मूल्य: 499/- रू.
  प्रकाशक: मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल
  संपर्क: 0755-4240340

- **आदमी बनने के क्रम में (कविता संग्रह)**
  लेखक: अंकुश कुमार
  मूल्य: 199/- रू.
  प्रकाशक: हिन्द युग्म, नोएडा उ.प्र.
  संपर्क: 911204374046

- **देखने की तृष्णा (विश्व सिनेमा पर लेख, निबंध और टीपें)**
  लेखक: सुशोभित
  मूल्य: 250/- रू.
  प्रकाशक: रुख पब्लिकेशन, नई दिल्ली
  संपर्क: 919818638563

- **फ़ुगरी**
  लेखक: ममता तिवारी
  मूल्य: 950/- रू.
  आकल्पन: सुविधा आर्ट एंड ग्राफिक्स, भोपाल
  संपर्क: 7509112343

- **बघेली लिखपट (बघेली गद्य संग्रह)**
  लेखक: अरुण कुमार पयासी
  मूल्य:120/- रू.
  प्रकाशक: युगधारा फाउंडेशन एवं प्रकाशन, लखनऊ
  संपर्क: 8765806208

- **माधवराव सप्रे (सार्द्ध शती स्मारक ग्रन्थ)**
  सम्पादक: विवेक श्रीधर
  मूल्य: 25/- रू.
  प्रकाशक: माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र
  संपर्क: 98260798263

हिन्दी के मान में मिले सम्मान

हिन्दी के पक्ष में किये गये बहुआयामी रचनात्मक पुरूषार्थ का मान रखते हुए मध्यप्रदेश के संस्कृति विभाग ने बारह विभूतियों को विभिन्न अलंकरणों से विभूषित किया। 14 सितंबर (हिन्दी दिवस) की शाम रवीन्द्र भवन के भव्य मंच पर मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान तथा संस्कृति मंत्री उषा ठाकुर ने चयनित शख्सियतों को एक लाख रूपए की सम्मान निधि, शॉल और प्रशस्ति पट्टिका भेंट किये।

राष्ट्रीय सूचना प्रौद्योगिकी सम्मान से जयदीप कर्णिक को वर्ष 2019 के लिए, नई दिल्ली की ऋतम संस्था को वर्ष 2020 के लिए सम्मानित किया गया। राष्ट्रीय निर्मल वर्मा सम्मान से सुश्री अर्चना पैन्यूली, डेनमार्क को वर्ष 2018 के लिए, कृष्ण कुमार, बर्मिघम को वर्ष 2019 के लिए रोहित कुमार 'हैप्पी', न्यूजीलैंड को वर्ष 2020 के लिए सम्मानित किया गया। राष्ट्रीय फादर कामिल बुल्के सम्मान से आनी मांतो, पेरिस को वर्ष 2018 के लिए बीरसेन जागा सिंह मारीशस को वर्ष 2019 के लिए और हिदेआकि इशिदा, टोकियो को वर्ष 2020 के लिए सम्मानित किया गया। राष्ट्रीय गुणाकर मुले सम्मान से वर्ष 2019 के लिए पद्माकर धनंजय सराफ, भोपाल को और वर्ष 2020 के लिए संतोष चौबे, भोपाल को सम्मानित किया गया। इसी तरह राष्ट्रीय हिन्दी सेवा सम्मान से शीला कुमारी, त्रिवेंद्रम को वर्ष 2019 के लिए और सुधीर मोता, भोपाल को वर्ष 2020 के लिए सम्मानित किया गया। सूचना प्रौद्योगिकी सम्मान हिंदी साफ्टवेयर और इससे जुड़े कार्यों में उत्कृष्ट योगदान के लिए, निर्मल वर्मा सम्मान विदेशों में अप्रवासी भारतीय द्वारा हिन्दी के विकास में योगदान देने, फादर कामिल बुल्के सम्मान विदेशी मूल के हिन्दी प्रचारकों, गुणाकर मुले सम्मान हिन्दी में वैज्ञानिक और तकनीकी लेखन के लिए और हिन्दी सेवा सम्मान अहिन्दी भाषी लेखकों को हिन्दी में सृजन के लिए प्रदान किया गया। विभिन्न सम्मानों के निर्णायकों में प्रतिष्ठित लेखक और हिन्दी सेवी शामिल थे। कार्यक्रम में सम्मानित हिन्दी सेवियों ने भी अपने विचार रखे। टोकियो के प्रोफेसर हिदेआकि इशिदा ने कहा कि भोपाल मध्यप्रदेश में सम्मान को वे स्वयं के लिए बहुत सौभाग्यशाली मानते हैं। संतोष चौबे ने इस क्षण को स्मरणीय बताते हुए भोपाल में हुए दसवें विश्व हिन्दी सम्मेलन को याद किया। उन्होंने कहा कि हिन्दी को नई गति देने के लिए नई तकनीक का उचित उपयोग करने की आवश्यकता है। पेरिस की आनी मान्तो, डेनमॉर्क की अर्चना पैन्यूली ने भी मध्यप्रदेश सरकार के संस्कृति विभाग की इस पहल को प्रशंसनीय बताया।

मुख्यमंत्री ने अपने उद्‌बोधन में कवि हृदय राजनेता अटल बिहारी वाजपेयी का स्मरण करते हुए कहा कि उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी में संबोधन दिया था, जो किसी भारतीय राजनेता द्वारा प्रथम बार संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी में दिया गया संबोधन था। उन्होंने हिन्दी का सम्मान बढ़ाया। हम सभी को हिन्दी पर गर्व करना चाहिए। हिन्दी हमारी मातृ भाषा भी है। विदेशी भाषा को गर्व का विषय न बनाकर हिन्दी को अपनी मातृ भाषा बनाएं। हिन्दी को प्रतिष्ठित करना हम सबका कर्तव्य है। हम मध्यप्रदेश में हिन्दी के प्रोत्साहन के लिए निरंतर कार्य कर रहे हैं। हिन्दी दिवस मनाना कोई कर्मकांड नहीं है बल्कि एक संकल्प है।

संस्कृति, पर्यटन और धार्मिक न्यास एवं धर्मस्व मंत्री उषा ठाकुर ने हिन्दी के पक्ष में अपना आत्मीय उद्‌गार साझा किया– हम सब को गर्व से हिंदी भाषा का उपयोग करना चाहिए। हिंदी हमारी मातृ भाषा, पहचान और हमारी संस्कृति का प्राण है। हिंदी भाषा में करीब 50 लाख शब्द है। वर्णमाला के 52 अक्षरों के साथ हजारों पर्यायवाची शब्दों को समाहित करती हिन्दी जैसी विश्व में कोई दूसरी भाषा नहीं है। उषा ठाकुर ने कहा कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने इंजीनियरिंग और मेडिकल की पढ़ाई हिन्दी में कराने के नवाचार के लिए मध्यप्रदेश की प्रशंसा की है। सुश्री ठाकुर ने कहा कि कितना अच्छा हो कि अगर हम एक नवाचार यह भी करें कि सड़कों पर दिशा बताने वाले और मार्गों के नामकरण के बोर्ड, दुकानों के साइन बोर्ड और चिकित्सकों के पर्चों और दवाइयों के पैकेट आदि पर विवरण हिन्दी में लिखा जाए।

कार्यक्रम के दूसरे चरण में कवि सम्मेलन हुआ जिसमें प्रख्यात कवि अशोक चक्रधर, कीर्ति काले, विनय विश्वास, विष्णु सक्सेना और मधु मोहिनी उपाध्याय ने रचना पाठ किया। संस्कृति प्रमुख सचिव शिव शेखर शुक्ला ने आभार व्यक्त किया। प्रशस्ति वाचन संस्कृति संचालक अदिति कुमार त्रिपाठी ने किया। कार्यक्रम का संचालन विनय उपाध्याय ने किया।

–हिमांशु सोनी

TAGORE INTERNATIONAL
LITERATURE & ARTS FESTIVAL

विश्व रंग

भारतीय संस्कृति, वैश्विक मंच!

22 सितंबर 2022 से 20 नवंबर 2022

भारत एवं पचास अन्य देशों में

कार्यक्रम

मुख्य कार्यक्रम
17, 18, 19 एवं 20 नवंबर 2022
कुशाभाऊ ठाकरे सभागार
(मिंटो हॉल), भोपाल

विश्वरंग कला महोत्सव
14-16 नवंबर 2022,
रवीन्द्र भवन, भोपाल

आरंभ
11 नवंबर 2022,
साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

विश्वविद्यालयों के केंद्रों द्वारा राष्ट्रीय कार्यशालाएँ
1 से 10 नवंबर 2022,
रबीद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल
एवं सी.वी. रामन् विश्वविद्यालय, बिलासपुर

विभिन्न देशों द्वारा अपने-अपने देशों में कार्यक्रम, ऑनलाइन या ऑफलाइन
1 से 10 नवंबर 2022

विभिन्न राज्य स्तरीय एवं केंद्र स्तरीय कार्यक्रम
रचना पाठ, पुस्तक चर्चाएँ, लोक केंद्रित कार्यक्रम
10 से 20 अक्टूबर 2022
वनमाली सृजन केंद्रों पर

पुस्तक यात्रा एवं युवा महोत्सव
22, सितंबर से 30 सितंबर 2022

आयोजक

RNTU Rabindranath TAGORE UNIVERSITY
DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY Chhattisgarh Madhya Pradesh Bihar AN AISECT GROUP UNIVERSITY
AISECT UNIVERSITY AN AISECT GROUP UNIVERSITY

तथा राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 100 से अधिक सहयोगी संस्थाएँ

संपर्क
सभी सत्रों की विस्तृत जानकारी एवं विश्वरंग में रजिस्ट्रेशन हेतु
हमारी वेबसाइट पर लॉग ऑन करें : www.vishwarang.com
फोन : +91-755-2700480, 9826332875, 9099006302

अंतरंग

हिंदी की हमजोली • आभा विराट की • सपनों की रंगरेज़ • हर कला में होती है नाटकीयता
कहाँ खो गई हिन्दी की हुँकार ? • किताबों की दुनिया • ये जो ज़िन्दगी है, किताब है..
बाँसुरी का बाँवरा • सरोद का शिखर • आनंद का वह रस-राग • नदी से माँगी माँ की बेटी हूँ
वर्षा-जल पर काग़ज़ की नाव • मन भीगे मौसम मल्हार • प्याले में रूह पानी की
रंग दल बादल के • बेगमों के शहर में 'बेगम' का 'बादल राग'
तराने रिमझिम के • नया आसमान-नया रंग • देश की माटी, देश का राग

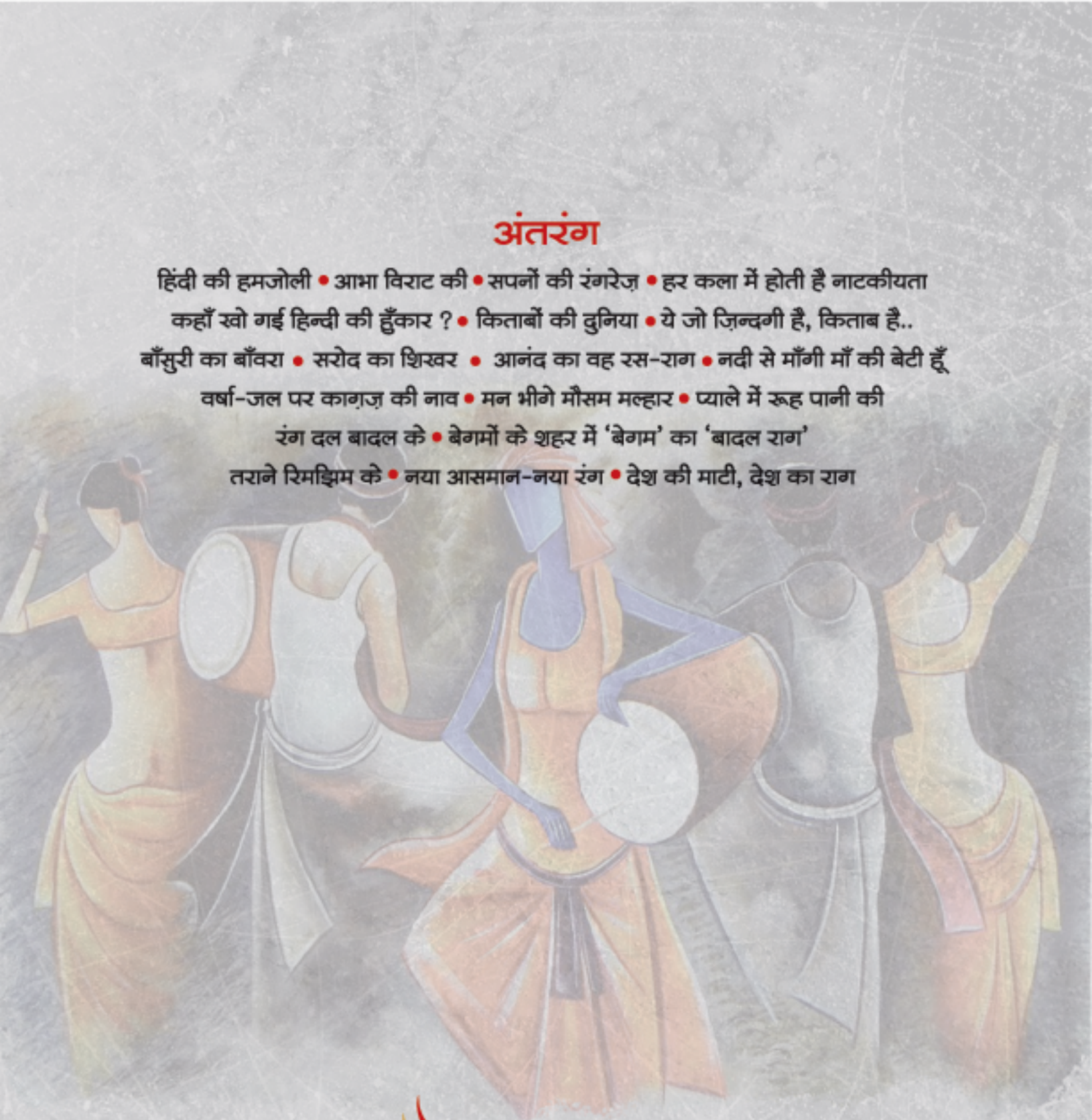

TAGORE INTERNATIONAL
LITERATURE & ARTS FESTIVAL

विश्व रंग

भारतीय संस्कृति, वैश्विक मंच!

22 सितंबर से 20 नवंबर 2022

भारत एवं पचास अन्य देशों में